श्री वीतरागाय नमः

कर्तव्य पथ-प्रदर्शन

लेखक

श्री १०८ श्री मुनि ज्ञानसागर जी

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन समाज हिसार

प्रथमबार १०००	वीर निर्वाण संवत् २४८७	मूल्य सदुपयोग

श्री १०८ श्री मुनि ज्ञानसागर जी महाराज

दो शब्द

श्री १०८ श्री मुनि ज्ञानसागर जी ने 'कर्तव्य पथ प्रदर्शन' नाम के इस ग्रन्थ की रचना करके मानव समाज पर बड़ा उपकार किया है।

मनुष्य के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु परयन्त जो भी घटनाएं घटती हैं उनके हर पहलू पर व्यापकता से मानव को अपने कर्त्तव्य पथ पर चलने की प्रेरणा इस ग्रंथ से मिलती है।

मुनि ज्ञान सागर जी वास्तव में ज्ञान के सागर हैं। आपकी विद्वता से सारा जैन समाज परिचित है। आप गृहस्थों तथा त्यागियों को जैन शास्त्रों का अध्ययन कराने में निरंतर संलग्न रहते हैं।

श्री १०८ श्री ज्ञानसागर जी (पं० भूरामल) का जन्म भारतवर्ष की वीर भूमि राजस्थान के राणोली (जयपुर) ग्राम में हुआ। आपकी पूज्य माता का नाम श्री घृतवली देवी और पिता जी का नाम श्री चतुर्भुज जी है। आप खण्डेलवाल वैश्य जाति से सम्बन्ध रखते हैं। वैसे तो आप कुमार ब्रह्मचारी हैं परन्तु अठारह वर्ष की अवस्था में अध्ययनकाल में ही नियम पूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया था। आज से १३ वर्ष पूर्व आपने गृह त्याग कर श्री दिगम्बर जैन आचार्य पूज्य श्री १०८ वीरसागर जी महाराज की सेवा में प्रवेश किया। कई वर्षों तक क्षुलक तथा एलक अवस्था का अभ्यास करते हुये आज से दो वर्ष पूर्व जयपुर नगर में समस्त परिग्रह का त्याग करके श्री १०८ पूज्य आचार्य श्री शिवसागरजी द्वारा दिगम्बरी दित्ता धारण की।

आप संस्कृत के तथा जैन आगम के वड़े प्रकाण्ड पण्डित हैं। मुनि संघ में अब आप उपाध्याय के रूप में मानव कल्याण का कार्य कर रहे हैं।

साधारण से साधारण व्यक्ति को भी धर्म तत्व को समझाने की दृष्टी से सरल शब्दों में आम बोल चाल की हिन्दी भाषा का प्रयोग करके आपने इस ग्रंथ की रचना की है।

परस्थिति वश अथवा अज्ञानता के कारण बहुत से घरानों में माता-पिता, पिता-पुत्र, भाई-बहिन, पति-पत्नि, भाई-भाई सास-बहू के जीवन में नई-नई उलझनों के कारण एक दूसरे के आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। और जीवन में कटुता आ जाती है। गृह सम्बन्धी उलझनों को सुलझाने के लिये, तथा सामाजिक आर्थिक तथा राज नैतिक क्षेत्र में सम्यक पूर्ण कार्य करने के लिये 'कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन' ग्रंथ का अध्ययन मार्ग दर्शन देता है कोई भी ग्रंथ लिखा जाकर यदि प्रकाशित न हो तो मानव समाज उसके लाभ से वंचित रह जाता है। जहाँ सदग्रंथों की रचना में महात्माओं का भारी उपकार माना जाता है। वहां ग्रंथों के प्रकाशन करने तथा कराने में जिन व्यक्तियों का सहयोग होता है वे भी समाज की दृष्टी में आदर्णीय समझे जाते हैं।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में श्री महावीरप्रसाद जैन एडवोकेट तथा ला० विशम्बर दास जैन का विशेष हाथ रहा है। जिनकी प्रेरणा से यह ग्रंथ प्रकाशित होकर समाज के रोबरू प्रस्तुत है। यह ग्रंथ आज के मानव समाज मेंसुख और शान्ति लाने के लिये अधिक सहायक होगा।

हिसार

ता० ५ अक्टूबर १९६०

देवकुमार जैन

॥ श्रीः ॥

कर्तव्य पथ-प्रदर्शन

❀ इष्ट स्तवनम् ❀

कर्तव्य पथ हम पामरों के भी लिये दिखला रहे ।
हो आप दिव्यालोकमय करुणानिधे गुणधाम हे ॥
फिर भी रहें हम भूलते भगवन् स्वकीय कुटेव से ।
इस ही लिये इस घोर संकट पूर्ण भव वन में फंसे ॥

——:o:——

मनुष्य की मनुष्यता—

माता के उदर से जन्म लेते ही मनुष्य तो हो लेता है फिर भी मनुष्यता प्राप्त करने के लिये इसे प्रकृति की गोद में पल कर समाज के सम्पर्क में आना पड़ता है। वहाँ इसे दो प्रकार के सम्पर्क प्राप्त होते है-एक तो इसका बिगाड़ करने वालों के साथ, दूसरे इसका भला चाहने वालों के साथ। अतः इसे भी दोनों ही तरह की प्रेरणा प्राप्त होती है। अब यदि यह इसका भला करने वालों के

प्रति भलाई का व्यवहार करता है। अमुक ने मेरा अमुक कार्य निकाला है मैं उसे कैसे भूल सकता हूं। इसके बदले में मैं मेरा सर्वस्व अर्पण करके भी मैं उनसे उ ऋण नहीं बन सकता। इस प्रकार आभार मानने वाला एवं समय आने पर यथाशक्य उसका बदला चुकाने की सोचते रहने वाला आदमी मनुष्यता के सम्मुख होकर जनसे सज्जन बनने का अधिकारी होता है। हाँ! अपने अपकारक का भी उपकार ही करना जानता हो उसका तो फिर कहना ही क्या वह तो महाजन होता है। कोई कोई ऐसा होता है जो भलाई का बदला भी बुराई के द्वारा चुकाया करता है उसे जन कहें या दुर्जन। कर्तव्यता की सीढ़ी पर खड़ा हुवा आदमी एक जगह नहीं रह सकता। वह या तो ऊपर की ओर बढ़े अपितु नीचे को आना तो अवश्यंभावी है ही। घड़ी का काँटा चाबी देनेके बाद रुका नहीं रह सकता उसी प्रकार मनुष्य भी जब तक साँस है तब तक निठ्ला नहीं रह सकता चाहे भलाई के कार्य करे या बुराई के उसे कुछ तो करना ही होगा। अतः बुराइयों में फंस कर अवनत बनने की अपेक्षा से भलाई के कार्य करते चले जाना एवं अपने आपको उन्नत से उन्नतर बनाना ही मनुष्यता है। बन्धुओ! बहुत से देश ऐसे हैं जहाँ भलाई के साधन अत्यन्त दुर्लभ हैं। वहाँ के लोगों को परिस्थिति से बाध्य होकर अपना जीवन पशुओं जैसा बिताना पड़ता है। परन्तु हम भारतवासियों के लिये तो उन सब भले साधनों की आज भी सुलभता है। हमारे बुजुर्ग या महर्षियों ने प्रारम्भ से ही सामाजिक रहन सहन ऐसा सुन्दर स्थापित कर रखा है कि हम उसे अनायास ही अपने जीवन में उतार सकते हैं और

अपने आपको सज्जन ही नहीं वल्कि सज्जन शिरोमणि भी बना सकते हैं। फिर भी हम उनका सदुपयोग न करके उनके विरुद्ध चलें यह तो हमारी ही भूल है।

हम उन्नत कैसे बनें ?

पानी से पूछा गया कि तुम्हारा रङ्ग कैसा है ? उत्तर मिला कि जैसे रङ्ग का सम्पर्क मिल जावे वैसा। यानि पानी पीले रङ्ग के साथ में घुल कर पीला तो हरे रङ्ग के साथ में घुल कर हरा बन जाता है। ऐसा ही हाल इस मनुष्य का भी है। इसको प्रारम्भ से जैसे भले या बुरे की सङ्गति प्राप्त होती है वैसा ही वह खुद हो जाया करता है। अभी कुछ दिन पहले की बात है—लखनऊ के हस्पताल में एक प्राणी लाया गया था जोकि अपनी चाल-ढ़ाल से भेड़िया बना हुवा था, परन्तु वस्तुतः वह मनुष्य था। जोकि कच्चे मांस के सिवा कुछ नहीं खाता था। भेड़िये की आवाज में ही बोलता था। वैसे ही अपनी शारीरिक चेष्टा-झपट्टा मारना वगैरह करता था। बात ऐसी है कि एक नन्हें वालक को भेड़िया उठा ले गया। वालक के मां-बापों ने सोचा कि उसे तो भेड़िया खा गया होगा। परन्तु भेड़िये ने उसे अपने बच्चे के समान पाला पोसा। जैसा मांस आप खाता था वैसा कुछ मांस उस बच्चे को भी दे दिया करता था। एवं अपने पास उसे प्रेम पूर्वक रखा। करीव वारह चौदह वर्ष की अवस्था में वह उन हस्पताल वालों की निगाह में चढ़ गया और चिकित्सा के लिये लाया गया। धीरे २ अब वह कच्चा मांस खाने की अपेक्षा पकाया हुआ मांस खाने लग रहा है और कोई कोई जवान मनुष्य की सी

बोलने लग गया है। मतलब यही कि मनुष्य जैसी सौबत संगत में रहता है वैसा ही बन जाता है। बुरों के साथ में रहने से अपने आप बुरा बनते हुए और का भी बुरा करने वाला होता है। तो अच्छों के साथ में रह कर खुद अच्छा होते हुए चला जाता है। एवं समाज का भी भला करने वाला होता है! अतः हमें चाहिये कि हम भले लोगों की संगति में रहें और भले बनें यह हमारी उन्नति है।

सत्सङ्गति का सुफल

एक बार की बात है एक बहेलिया दो तोते लाया। उनमें से उसने एक तो किसी वैश्या को दे दिया और दूसरे को एक पण्डित जी के हाथ बेच दिया। थोड़े दिन के बाद वैश्या एक रोज मैफिल करने राजदरबार में पहुंची। उसका तोता उसके हाथ में था सो पहूंचते ही राजा के सम्मुख अनेक प्रकार के भण्ड वचन सुनाने लगा। राजा को गुस्सा आया और उसने हुक्म दिया कि इसे मार डाला जावे। तोता बोला हुजूर! मैं मारा तो जाऊंगा ही परन्तु इससे पहिले मुझे मेरे भाई से मिला दीजिये। राजा ने कहा तेरा भाई कहाँ है? तोते ने कहा! गिरधरशर्मा जी के यहां रहता है। उसी समय हलकारा गया और मय तोते के गिरधरशर्मा जी को बुलवा लाया। गिरधरशर्मा जी तो बोले ही नहीं उनके पहिले ही उनके तोते ने आते ही राजा को अनेक तरह के बदावा दिये। राजा बहुत खुश हुआ, सहसा राजा के मुंह से निकल पड़ा कि

शावाश जीते रहो तुम और तुम्हारा साथी। वेश्या वाले तोते ने कहा कि तव फिर तो मैं भी अव अमर वन गया क्योंकि इसका साथी तो मैं ही हूँ। राजा असमञ्जसमें पड़ गया तो पंडितजी वाले तोते ने वकालत की कि प्रभु इस में विचार की क्या बात है! यह दुष्ट है इसने आप के साथ बुरा वर्ताव किया है अवश्य। किन्तु आप तो सज्जनों के सरदार हैं आपका तो काम बुरा करने वालों के साथ भी भला वर्ताव करना ही होना चाहिये। पृथ्वी के पूत पेड़ों का भी यह हिसाव है कि वे लोग पत्थर मारने वाले को भी उसके वाद में मीठा फल प्रदान किया करते हैं। आप तो पृथ्वी के पति हैं, सम्पूर्ण प्रजा के नाथ हैं आपका तो सभी के साथ प्रेम होना चाहिये। हाँ यदि यह भी सचेतन होगा तो आगे के लिये अपने इस दुर्व्यवहार का त्याग कर सही मार्ग का अनुसरण करेगा वस इतना ही कहना पर्याप्त है।

सुभाषित ही सञ्जीवन है

जिस को सुनकर भूला भटका हुआ आदमी ठीक मार्ग पर आजावे और मार्ग पर लगा हुआ आदमी दृढ़ता के साथ उसे अपना कर अपने अभीष्ट को प्राप्त करने में समर्थ वन जावे उसे सुभाषित कहते हैं। यद्यपि विना वोले आदमी का कोई भी कार्य सुचारु नहीं होता, किन्तु अधिक वोलने से भी कार्य होने के वदले वह विगड़ जाया करता है। समय पर न वोलने वाले को मूक कह कर उसका निरादर किया जाता है तो अधिक या व्यर्थ वोलने वाले की भी वावदूक या वाचाल कह कर भर्त्सना ही होती है। तुली

हुई और समयोचित बात का ही दुनियाँ में आदर है। यहाँ हमें महाभारत के एक प्रसंग का स्मरण हो आता है। कौरव और पाण्डवों में घमासान युद्ध हो रहा था। इधर पाण्डव पाँच भाई थे तो उधर भी कर्ण, भीष्म, जयद्रथ आदि चोटी के योद्धा थे। बल्कि द्रोणाचार्य तो बाण विद्या के अधिनायक थे जो कि कौरवों की तरफ से खड़े होकर पाण्डवों की सेना में विध्वंस मचा रहे थे। यह देख कर श्री कृष्ण को दिल में विचार आया कि अगर कुछ देर भी ऐसा होता रहा तो आज अवश्य ही पाण्डवों की पराजय हो जायेगी इतने ही में एक हाथी मारा गया, श्रीकृष्णने युधिष्ठिर के पास जाकर पूछा कि भूपते कौन मारा गया? युधिष्ठिर इसका उत्तर अनुष्टुप चरण में अश्वत्थामाहतोहस्ती इस प्रकार से देने वाले थे उन्होंने बोलना प्रारम्भ करके अश्वत्थामाहतो इतना ही बोला था कि उसी क्षण श्री कृष्ण ने अपना पान्चजन्य शंख बजा दिया। लोगों ने समझा कि द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा मारा गया। अश्वत्थामा गिने हुये योद्धावों में से था। अतः इसे सुन कर पाण्डवों की सेना में उत्साह छा गया और कौरवों की सेना का उत्साह भङ्ग हो कर उस में शोक छा गया और पुत्र शोक से द्रोणाचार्य का भी भुजबल ढ़ीला पड़ गया। इसका नाम है अवसरौचित बात जिस से कि अनायास ही कार्य सिद्ध हो जाता है। हाँ व्यर्थ की बकवाद करने वाला आदमी अपने आप विपत्ति के गर्त में गिरता है।

—:(०):—

व्यर्थवादी की दुर्दशा

जङ्गल में एक तालाब था उसका जल जेठ की प्रखर धूप से सूख कर नाम मात्र रह गया। उसके किनारे पर रहने वाले दो हंसों ने आपस में सलाह की कि अब यहां से किसी भी इतर जलाशय पर चलना चाहिये। जिसको सुन कर उनके मित्र कछवे ने कहा कि तुम लोग तो आकाश मार्ग से उड़ कर चले जावोगे, परन्तु मैं कैसे चल सकता हूँ। हंसों ने सोचा बात तो ठीक ही है और एक अपने मित्र को इस प्रकार विपत्ति में छोड़ कर जाना भी भलमानसियत नहीं है। अतः अपनी बुद्धिमता से एक उपाय सोच निकाला। एक लम्बी सरल लकड़ी लाये और कछवे से कहा कि तुम अपने मुंह से इसे बीच में से पकड़ लो, हम दोनों इसके इधर उधर के प्रान्त भागों को अपनी चोंचों से पकड़ कर ले उड़ते हैं यह ठीक होगा। इस प्रकार तीनों आसमान में चलने लगे। चलते २ धरातल पर मध्य में एक गाँव आया। गांव के लोग नया दृश्य देख कर अचम्भे में पड़े और आपस में कहने लगे कि देखो यह कैसा वीचित्र खेल है यों कल कल मचा देख कर कछवे से न रहा गया। वह बोल पड़ा कि क्यों चक चक करते हो बस फिर क्या था धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा और पकड़ा गया। मतलब यह कि मनुष्यों को अपने भले के लिये शारीरिक संयम के साथ साथ वाणी का भी संयम होना ही चाहिये। शारीरिक संयम उतना कठिन नहीं है जितना कि मनुष्य के लिये वाक्यसंयम। एवं मानसिक संयम तो उससे भी कहीं अधिक कठिन है। वाणीका संयम तो मुंह बंद किया

और हो सकता है, किन्तु मन तो फिर भी चलता ही रहेगा। मनुष्य का मन इतना चंचल है कि वह क्षण भर में कहीं का कहीं दौड़ जाता है। उसको नियन्त्रण के लिये तो सतत साधु-संगति और सत्साहित्यावलोकन के सिवा और कोई भी उपाय नहीं है। यद्यपि साधुवों का समागम हरेक के लिये सुलभ नहीं है फिर भी उनकी लिखी हुई पुस्तकों को पढ़ कर अपना जीवन सुधारा जा सकता है।

सत्साहित्य का प्रभाव

सुना जाता है कि महात्मा गांधी अपनी वैरिस्ट्री की दशा में एक रोज रेल से मुसाफिरी कर रहे थे। सफर पूरा बारह घन्टों का था। उनके एक अङ्गरेज मित्र ने उन्हें एक पुस्तक देते हुए कहा कि आप अपने इस सफर को इस पुस्तक के पढ़ने से सफल कीजियेगा। उसको गांधीजी ने शुरु से आखिर तक बड़े ध्यान से पढ़ा। उस पुस्तक को पढ़ने से गांधी जी के चित्त पर ऐसा असर हुआ कि उन्होंने अपनी वैरिस्ट्री छोड़ कर उसी समयसे सादा जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया। आजकल पुस्तक पढ़ने का प्रचार आम जनता में भी बड़े वेग से बढ़ रहा है और वह बुरा भी नहीं है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ने के लिये पुस्तक ऐसी चुननी चाहिये जिसमें कि मानवता का झरना बह रहा हो। जिसके प्रत्येक वाक्यों में निरामिष-भोजिता, परोपकार, सेवाभाव, आदि सद्गुणों का पुट लगा हुआ हो। विलासिता, अविवेक, डरपोकपन आदि दुर्गुणों का निर्मूलन करना ही जिसका ध्येय हो। फिर चाहे वह किसी की भी लिखी हुई हो और किसी भी भाषा में हो उसके पढ़ने में कोई हानि नहीं। कुछ लोग समझते हैं कि अपनी साम्प्रदायिक पुस्तकों

सिवाय दूसरी पुस्तकों को पढ़ना सर्वथा बुरी बात है, परन्तु यह उनका समझना ठीक नहीं क्योंकि समझदार के लिये तो बुराइयों से बचना एवं भलाई की ओर बढ़ना यह एक ही सम्प्रदायिक होना चाहिये। अतः जिन पुस्तकों के पढ़ने से हमारे मन पर बुरा असर पड़ता हो जिनमें असली उदण्डतापूर्ण अहंकारादि दुर्गुणों को अंकुरित करने वाली बातें अंकित हों ऐसी पुस्तकों से अवश्य दूर रहना चाहिये। पुस्तकों से ही नहीं बल्कि ऐसे तो वातावरण से भी हर समय बचते रहना ही चाहिये। क्योंकि मनुष्य के हृदय में भले और बुरे दोनों ही तरह के संस्कार हुआ करते है जोकि समय और कारण को पाकर उदित हो जाया करते हैं। व्यापार करते समय मनुष्य का मन इतना कठोर हो जाता है कि वह किसी गरीब को भी एक पैसे की रियायत नहीं करता परन्तु, भोजन करने के समय में कोई भूखा अपाहिज आ खड़ा हो तो उसे झट ही दो रोटी दे देता है। मतलब यही कि उस २ स्थान का वातावरण भी उस २-प्रकार का होता है अतः मनुष्य का मन भी वहाँ पर उसी रूप में परिणमन कर जाया करता है। आप जब सिनेमा हाल में जावेंगे तो आप का दिल वहाँ की चहल पहल से देखने में लालायित होगा परन्तु जब आप चल कर श्री भगवान के मन्दिर मे जावेगें तो वहाँ यथाशक्ति नमस्कार मन्त्र का जाप देना और भजन। करना जैसे कामों में आप का मन प्रवृत होगा। हाँ यह बात दूसरी है कि अच्छे वातावरण में रहने का मौका इस दुनियाँदारी के मनुष्य को बहुत कम मिलता है इसका अधिकाँश समय तो बुरे वातावरण में ही बीतता है अतः अच्छे विचार प्रयास करने पर भी कठिनता से

प्राप्त होते हैं। और प्राप्त होकर भी बहुत कम समय तक ही ठहर पाते हैं। किन्तु बुरे विचार तो अनायास भी आजाया करते हैं तथा देर तक टिकाऊ होते हैं। अतः बुरे विचारों से बचने के लिए और अच्छे विचारों को बनाये रखने के लिये सत्साहित्य का अवलोकन, चिन्तन अवश्य करते रहना चाहिये।

साधु समागम—

अपने विचारों को निर्मल बनाने के लिये जिस प्रकार से सत्साहित्य का अध्ययन करना जरूरी है उसी प्रकार अपने जीवन को सुधारने लिये मनुष्य को समीचीन साधुवों का संसर्ग प्राप्त करना उससे भी कहीं अधिक उपयोगी होता है। मनुष्य के मैल को धोने के लिये उत्तम साहित्य का पठन पाठन, जल और साबुन का काम करता है। परन्तु पुनीत साधुवों का समागम तो इसके जीवन में चमत्कार लाने के लिये वह जादू का सा कार्य करता है जैसा कि लोहे के टुकड़े के लिये पारस का संसर्ग। अतः विचारशील मनुष्य को चाहिये कि साधुवों का सम्पर्क प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहे और प्राप्त हो जाने पर यथाशक्य उससे लाभ उठाने में न चूके ऐसा करने से ही मनुष्य अपने जीवन को सफल और सार्थक बना सकता है। आजसे अढ़ाई हजार वर्ष पहले लगभग की बात है कि भगवान् महावीर के शिश्य सुधर्म स्वामी देश देशान्तर में भ्रमण करते हुये और अपने सदोपदेशामृत से जनता का कल्याण करते हुये आकर राजगृह नगर के उपवन में ठहरे। उन

के आने का समाजार सुन कर राजगृह की जनता उनके दर्शन को आई और उनके धर्मोपदेश को सुन कर एवं अपनी योग्यतानुसार मनुष्योचित्तानियमव्रत लेकर अपने २ घर को गई उन्हीं में एक जम्बूकुमार नाम का साहूकार का लड़का था उसने सोचा स्वामी जी जब यह फरमा रहे हैं कि मनुष्य जन्म को पाकर इसे एकान्त क्षणि विषय वासना के चक्कर में ही नहीं विता देना चाहिये। किन्तु कुछ परमार्थिक कार्य तो करना ही चाहिये। अहो यह भोला मनुष्य जिस भौतिक विभूति के पीछे लग कर चल रहा है एक न एक दिन तो इसको उसे छोड़ना ही होगा। अगर यह उसे न छोड़ेगा तो अन्त में वह तो इसे अवश्य छोड़ ही देगी। परन्तु यह उसे छोड़दे और वह इसे छोड़े इन दोनों वातोंमें उतना अन्तर तो कमसे कम अश्वय है जितना कि मनुष्य के टट्टीजाने में तथा उल्टी हो जाने में हुवा करता है। यानी आप जब प्रातः जंगल होकर आते हैं तो आपका चित्त प्रसन्न होता है किन्तु समुचित भोजन करें और भोजन करने के अनन्तर ही किसी कारण से कै हो जावे तो आपका जी मिचलावेगा। वस यही हिसाव सम्पत्ति के छोड़ देने और छूट जाने में है। अतः प्राप्त सम्पत्ति को छोड़ कर दूर होना ही मनुष्य के लिये श्रेयस्कर है। एवं जिस दलदल में से निकलना दुष्कर होकर भी आवश्यक है तो फिर अधिक समझदारी तो इसी में है कि उसमें फंसना ही क्यों चाहिये। वस, मैं तो अब चलूं और माता पिता से आज्ञा लेकर आकर इन गुरुदेव के चरणों की सेवा में ही अपने आपको लगादूं। ऐसा सोच कर जम्बूकुमार घर पर गया ही था कि माता

पिता ने पूछा कि इतनी देर तक कहाँ रहे ? जम्बूकुमार बोला कि एक साधु महात्मा के पास बैठ गया था और अब मैं सदा के लिये उन्हीं के पास रहना चाहता हूं। माता पिता यह सुन कर अवाक् हो रहे। कुछ देर सोच कर फिर बोले कि-बेटा तू यह क्या कह रहा है ? देखा हम तो तेरी शादी की तैयारियाँ कर रहे हैं और तू ऐसी बात सुना रहा है जिससे कि हमारा कलेजा काँप उठता है कम से कम तुझे शादी तो कर लेना चाहिये। तू खुद समझदार है तुझे हमारी इस प्रसन्नता में तो गड़बड़ी नहीं मचाना चाहिये।

सकामता के साथ निष्कामता का संघर्ष :

माता पिता ने सोचा इसे छोटी सी बात कह कर मनवा लेना चाहिये। फिर तो यह खुद ही अपने दिल में आई हुई बात को भूल जावेगा। बस यही सोच कर उन्होंने कहा था कि विवाह तो करलो। इस पर जम्बू ने विचार किया कि ये माता पिता हैं। इनका इस मेरे शरीर पर अधिकार है अतः इस साधारण सी बात के लिये नाराज करना ठीक नहीं है। वैरागी का अर्थ किसी को नाराज करना या किसी पर नाराज होना नहीं है। वह तो स्वयं आत्मावत परमात्मा को समझा करता है। उसकी निगाहों में तो जितनी अपने आपकी कीमत होती है उतनी ही दूसरे की भी। फिर ये तो मेरे इस जन्म के माता पिता हैं। इनका तो इस शरीर की ओर निगाह करते हुए बहुत ऊंचा स्थान है, और कहा कि ठीक है, आप कहते हैं तो मैं विवाह कर लूंगा किन्तु दूसरे ही रोज

गुरुचरणों में जा प्राप्त होऊंगा। जिन आठ लड़कियों से जम्बू का विवाह होना निश्चित हुआ था उन्हें भी सावधान कर दिया गया। उन सबने जवाब दिया हम तो प्रतिज्ञा कर चुकी हैं कि इस जन्म में तो हमारे ये ही पति हैं। इनके अतिरिक्त और सब नर तो हमारे बाप, भाई समान हैं अतः बेखटके शादी रचा दी जावे, फिर या तो हम उन्हें लुभा लेंगी या हम सब भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण कर लेंगी। विवाह हो गया और सुना जाता है कि उसमें इन्हें ९९ करोड़ सोने का दहेज मिला। परन्तु जहां वैराग्य है वहां चक्रवर्ती की सम्पदा भी तिनके के समान निस्सार है, वह उसकी नहीं, अगर है भी तो दुनियां की है। अस्तु रात हुई और रङ्ग महल में जहां कि विषयानुरागवर्द्धक सभी तरह का परिकर सम्भव से भी अधिक संख्या में जुटाया गया है वहां एकतरफ तो दिल से समता को संभाले हुये स्वयम् जम्बूकुमार विराज रहे हैं। उधर दूसरी तरफ उनकी नवविवाहिता आठों पत्नियां वस्त्रा भूषणों से सुसज्जित होकर ममता की मोहक महक लिये हुये आकर खड़ी हैं। जो कि अपना रङ्ग उन पर जमाना चाह रही हैं। परन्तु वहां उनके चित्त पर तो साधु सुधर्माचार्य की चरण सेवा का अमिट रङ्ग लगा हुआ था वहाँ दूसरा रंग कैसे चढ़ सकता था।

इधर एक और घटना घटी। एक प्रभव नाम का प्रख्यात चोर था जोकि पाँच सौ चोरों का सरदार था। उसने सुना कि जम्बू को दहेज में खूब धन मिला है। चलो आज उसी पर हाथ साफ किया जावे। इस चोर की यह विशेषता थी कि जहां भी वह जाता था वहाँ के लोगों को नींद लिवा देता था। और अपना काम बड़ी आसानी

से कर लिया करता था। वह आया और धन की गठरियां बान्ध कर चलने को तैयार हुआ तो उसके पैर चिपक गये। और चोर आश्चर्य में पड़ा और इधर उधर देखने लगा तो बगल के कमरे में औरत मर्द आपस में बात कर रहे हैं। चोरी का फिक्र छोड़ कर प्रभव वहां पहूंचा और जम्बू को उसने जुहारु किया, जम्बूकुमार बोले कौन है? प्रभव ! तुम आज यहां इस समय कैसे आये? प्रभव ने कहा प्रभो अपराध क्षमा कीजिये मैं चोरी करने के लिये आया था। आज तक मैं मेरे काम में कहीं भी फैल नहीं हुआ किन्तु आज आपने मुझे हरा दिया। आपके पास ऐसा कौनसा मन्त्र बल है कि जिससे धन लेकर जाते हुये के मेरे पैर चिपक गये। जम्बूकुमार बोले प्रभव ! मुझे तो पता भी नहीं कि तुम कब आये और क्या कर रहे थे। मैं तो सिर्फ गुरुचरणों की सेवा का मन्त्र जपता हूं और अपने मन में उसी की टेर लिये हुए हूं। प्रभात होते ही मैं उनके पास में जाकर निर्ग्रन्थव्रत ग्रहण करने वाला हूं। तब फिर इस सारी सम्पत्ति को तुम ले जाना। मैं स्वेच्छा से इसका अधिकारी तुम्हें बनाता हूं फिर इसमें चोरी करने की बात कौनसी है। ऐसा सुनकर प्रभव बहुत प्रभावित हुआ। उसने मन में सोचा यह पुरुष ही है जो प्राप्त हुई सम्पत्ति (लक्ष्मी)को इस तरह से ठुकरा रहा है और कहने के लिये तो मैं भी पुरुष ही हूं जो कि वेश्या की तरह इसके पीछे फिर रहा हूं फिर यह भी मुझे प्राप्त नहीं होती तथा हो भी जाती है तो ठहरती नहीं है।

—

लक्ष्मीका पति

सुना जाता है कि एक वार लक्ष्मी का स्वयम्वर हो रहा था। उसमें सभी लोग अपनी शान और शौकत के साथ आ सम्मिलित हुये थे। जब स्वयम्वर का समय हुआ तो लक्ष्मी आई और बोली कि मैं उसी पुरुष को वरूगीं जो कि स्वप्न में भी मेरी इच्छा न रखता हो। इस पर सब लोंग बड़े निराश और हतप्रभ हो रहे। लक्ष्मी चलती २ अन्त में वहां पर आई जहां शेष नाग की शैय्या पर विष्णु महाराज वेफिकर सोये हुये थे। आकर उसने उनके गले में वर माला डालदी। विष्णु बोले कौन है ? तो जवाव मिला कि लक्ष्मी है। फिर कहा गया कि चली जावो यहां से तुम क्यों आई हो यहां पर मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। लक्ष्मी वोली प्रभो मुझे मत ठुकराइये मैं सिर्फ आपकी पगचम्पी करती रहूँगी। वन्धुवों यह सब अलङ्कारिक कथन है। इसका मतलव तो इतना ही है कि जो विपत्ति से डरता है और सम्पति चाहता है उससे सम्पति स्वयं दूर हो जाती है। परन्तु जो सम्पति को याद भी नहीं करता एवं विपत्ति आ पड़ने पर उससे घवराता नहीं है उस पुरुष के चरणों को सम्पत्ति स्वयं चूमती है। प्रभव को भी इससे आज प्रति बोध प्राप्त हुआ वह विचारने लगा कि जब ऐसी वात है तो फिर मैं भी इस बोझे को अपने सिर पर लादे क्यों फिरूं ? वल्कि जिस मार्ग को यह सेठ का लड़का अपना रहा है उसी पथ का पथिक मैं

भी क्यों न बन रहूं। जिसमें सबका हित हो ऐसा सोच कर वह जम्बूकुमार के चरणों में गिर पड़ा और बोला कि प्रभो अब मुझे इसकी भूख नहीं रही, आपके वचनामृत से ही मैं तो तृप्त हो गया हूं। अतः अब मैं सिर्फ यह चाहता हूं कि मुझे भी आप अपने चरणों में ही जगह दें। न की मुझे अब भी इसकी जड़ में ही फंसा रहने दें। इससे हमें यह सीख लेना चाहिये कि एक साधुसेवी के संसर्ग में आकर भी जब प्रभव सरीखा दुरहङ्कारी जीव सहसा निरहङ्कार हो जाता है दानव से मानव बनजाता है, तो फिर साक्षात् साधु समागम की महिमा का तो कहना ही क्या? उसके तो गीत वेद और पुराणों में जगह २ पर गाये हुये हैं। अतः अपने आपको सुधारने के लिये साधु संगति करनी ही चाहिये। जिससे कि मनुष्य का मन धैर्य क्षमादिगुणों को पाकर बलवान बनें।

मनोबल ही प्रधान बल है

वैसे तो मनुष्य के पास में ज्ञानबल, धनबल, सेनाबल, अधिकारबल और तपोबल आदि अनेक तरह के बल होते हैं जिनके सहयोग से मनुष्य अपने कर्तव्य कार्य के इस पार से उस पार पहुँच पाता है, परन्तु उन सब बलों में शरीरबल, वचनबल और मनोबल ये तीन बल उल्लेखनीय बल हैं। मनुष्य को अपना सभी तरह का कार्य सम्पादन करना उसके शरीर का सबसे पहला काम है। शरीर

जितना भी हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ होगा वह उतना प्रत्येक कार्य को सुन्दरता के साथ सम्पादित कर सकेगा, यह एक साधारण नियम है। अतः उसको प्रगतिशील बनाये रखने के लिये समुचित आहार की जरूरत समझी जाया करती है और उसकी चिन्ता सभी को रहा करती है एवं अपने बुद्धि विवेक तथा वित्तवैभव के अनुसार हर कोई ही उसको अच्छी से अच्छी योजना करने में कुछ कसर नहीं रखता हैं। यह तो ठीक है, परन्तु वचन का अधिकार तो उस शरीर से कहीं अधिक होता है। शरीर द्वारा जिस काम को हम वर्षों में भी सम्पादित नहीं कर पाते, उसे अपनी वचनपटुता से बात की बात में हल कर बता सकते हैं। बच्चे को जब प्यास लगती है, या उसका पेट दूखता है तो वह रोता है, छटपटाता है, हाथ पैर पटकता है। माता भी उसके दुःख को मिटाना चाहती है, किन्तु उसकी अन्तवृत्ति को नहीं पहिचान पाती, अतः कभी २ विपरीत प्रतिकार हो जाता है तो प्रत्येक वेदना बढ़ती है। बाकी वहाँ वश भी क्या चले, बच्चे के पास तो वचन नहीं हैं ताकि वह कह सुनावे और उसका समुचित्त उपाय कर बताया जावे। इसी प्रकार संसार का सारा व्यवहार प्रायः वचन के भरोसे पर ही अवलम्बित है। जिसकी कि खुराक स्पष्ट सत्यवादिता है, सो क्या इसकी तरफ भी आप सब लोगों का ध्यान कभी गया है, किन्तु नहीं। बल्कि अधिकाँश लोग तो अपने वचन को कूटत्व नाम क्षय रोग से उपयुक्त बना कर ही अपने आपको धन्य मानते हैं। उनके इस ऐसा करने में उनकी एक मानसिक दुर्बलता ही हेतु है। मानसिक कमजोरी से ही उनकी यह धारणा बनी हुई है कि एकान्त सत्य सरल या स्पष्ट वाक्य प्रयोग

से मनुष्य का कभी निर्वाह नहीं हो सकता। उसको अपनी आव-श्यकता की पूर्ति के लिये उसमें कुछ २ बनावटी पन जरूरी ले आना चाहिये। बस इसकी इस मानसिक दुर्बलता ने सम्पूर्ण व्यवहार को दूषित बना दिया, ताकि सर्वत्र अविश्वास के आतङ्क ने अपना अधिकार जमा लिया। एवं जीवन-पथ कष्टप्रद हो गया। मनुष्य की जीवन यात्रा में इसका मन सईस का काम करता है। वचन घोड़े का और शरीर गाड़ी का। अगर गाड़ी मजबूत भी हो और घोड़ा भी चुस्त हो किन्तु उसको हाँकने वाला सईस निकम्मा हो तो वह उसे ठीक न चलाकर उत्पथ में ले जावेगा एवं बरबादी कर देगा वैसे ही मनुष्य का मन भी चंचल हो रहने पर किसी भी कार्य को करके भी उसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। एक समय की बात है कि एक भट्टारक जी का शिष्य था, जो कि एक मन्त्र लेकर जपने को बैठ गया। उसने जप करते हुये जब कई रोज हो हो गये तो भट्टारक जी ने उससे पूछा कि तू क्या कर रहा है? उसने कहा कि महाराज जी मैं अमुक रूपसे यह मन्त्र जप रहा हूं फिर भी यह सिद्ध नहीं हो रहा है, क्या मेरे विधि विधान में कुछ कसर है? गुरु जी बोले कमी तो कुछ भी नहीं दिखती है। परन्तु ला देखें जरा मुझे दें। यों कहकर भट्टारक गुरु जी ने उस मन्त्र को जपना प्रारम्भ किया और एक जप पूरा होते ही मन्त्र सिद्ध हो गया। मन्त्र का अधिष्ठाता देव आ उपस्थित हुआ। गुरुजी बोले भाई इस लड़के को मन्त्र जपते हुये आज कई रोज होगये सो क्या बात है! देव बोला महाराज? मैं क्या करूं! इसका मन ही अपना इसके वश में नहीं है। मन्त्र को जपते हुये भी यह क्षण में तो कुछ

सोचता है और फिर क्षण में कुछ और ही सोचने लगता है। मतलब यह है कि हरेक कार्य को सम्पन्न करने के लिये सबसे पहले हमें अपने मन को एकाग्र करने की आवश्यकता है। भले ही वह कार्य लौकिक हो, चाहे पारमार्थिक, मन की एकाग्रता के बिना वह कभी ठीक नहीं हो सकता। व्यापार, व्यवहार शास्त्र शोधन, भगवद्भजन आदि कोई भी कार्य हो, उसको हम जैसी मानसिक लगन से करेंगे उतना वह सुन्दर सुचारु होकर यशप्रद होगा। नेपोलियन के लिये कहा जाता है कि वह एकबार युद्ध की व्यवस्था ठीक २ कर देता था और फिर आप युद्ध भूमि में ही गणित के सवाल किया करता था। डेरों, तम्बुवों पर गोले बरसते, धड़ाधड़ सैनिक मरते किन्तु नेपोलियन का मन गणित का सवाल हल करने में ही लगा रहता था। खलीफा उमर की भी ऐसी ही बातें सुनी जाती हैं। लड़ाई के मैदान में ही जब नमाज का वक्त हो जाता वह निडर हो कर युद्ध स्थल के बीच में ही घुटने टेक कर नमाज़ पढ़ने लगता था, फिर उसे यह पता नहीं रहता था कि कहाँ क्या हो रहा है। एक फकीर के शरीर में तीर चुभ गया, जिससे उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी। तीर को वापिस खैंचने के लिये हाथ लगावो कि वेदना दूनी हो जाती थी, अब क्या किया जावे बड़ी कठिन समस्या हो गई, उसको देख कर लोग घबराये तो एक आदमी बोला अभी रहने दो, जब यह नमाज पढ़ने बैठेगा तब निकाल लेंगे। सायं का समय हुआ फकीर नमाज पढ़ने लगा पलभर में ही उसका चित्त इतना एकाग्र हुआ कि उसके शरीर में तीर खैंच कर निकाल लिया गया, और उसे मालुम भी नहीं हुआ।

जम्बूप्रसाद जी रईस सहारनपुर वालों के शरीर में एक भयङ्कर फोड़ा हो गया, डाक्टर बोला ओपरेसन होगा, क्लोरोफार्म सूंघना पड़ेगा, लाला जी बोले क्या जरूरत है ? मैं नमस्कार मन्त्र जपने लग रहा हूँ, तुम अपना काम निःशङ्क होकर करलो। सो यह सब मन को एकाग्र कर लेने की महिमा है। मन को एकाग्र कर लेने पर मनुष्य में अपूर्व बल आजाता है। हमारे पूर्व साहित्य में हमें ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिल रहे हैं, जिनमें न होने जैसी बातें भी होती हुई बताई गई हैं। जैसे द्रोपदी को बेअदब करने के लिये उसकी साड़ी पकड़ कर दुःशासन खेंचता है तो साड़ी बढ़ती चली जाती है। मगर द्रोपदी बेअदब नहीं होने पाती, यह सब महासती के चित्त की एकाग्रता का ही प्रभाव तो है, हम लोग ऐसी बातों को सुन कर आश्चार्य करते हैं, किन्तु जिस चित्त की एकाग्रता द्वारा यह आत्मा अपनी अनादि कालीन कर्मकालिमा को भी क्षण भर में दूर हटा कर परमात्मा बनता हुआ जन्म मरण से भी रहित हो लेता है उस मन की एकाग्रता की सामर्थ्य के आगे फिर ये सब बातें क्या दुष्कर कही जा सकती हैं।

मन की एकाग्रता कैसे प्राप्त हो—

मन को एकाग्र करना शान्त बनाना बड़े महत्त्व की बात है, यह तो समझ में आता है परन्तु विचारों का गुब्बार हमारे इस पोले मनमें भरा हुआ है उसे निकाल बाहर किये बिना मनकी एकाग्रता हो कैसे ! प्रथम तो इसके पास में यह खालूं, यह पीलूं फिर टहललूं

और सोलू इत्यादि इतने विचार उपसंग्रहीत हैं कि उनका दूरकरना सरल बात नहीं है। और अगर कहीं प्रयास करके इन ऊपरी विचारों को दूर कर भी दिया तो यह तो मकड़े की भांति प्रति क्षण नये विचारों को जन्म देता ही रहता है। सो उन भीतरी विचारों पर रोक लग जाने का तो कोई भी उपाय नहीं दीख पड़ता है। बल्कि जहां ऊपरी विचारचक्र को दूर करने के लिये प्रयत्न करो तो भीतरी विचार परम्परा बड़े वेग के साथ उमड़ पड़ता है। ऐसी दशा में मनको यदि शान्त एकाग्र किया जाय तो कैसे? बात यह है कि इस बाह्य अपार संसार-चक्र को हम अपनी मनो भावना के द्वारा अपने पीछे लगाये हुये ही रहते हैं। दीव्यज्ञान शक्ति को परमात्मा परमेश्वर के साथ तन्मय होकर रखने के बदले हम उसको दुनियां की क्षुद्र बातों में ही व्यर्थ खर्च करते रहते हैं। आज यह रोटी मोटी हो गई और एक जगह से जरा जल भी गई, यह साग भी अच्छा नहीं बना, इसमें नमक कम पड़ा इत्यादि जरा जरा सी बातों की चर्चा में ही हम रस लेते हैं और अपने ज्ञान का दुरूपयोग करते हैं। एवं मनकी दोड़ निरन्तर बाहर ही होते रहने से यह निरंकुश बन गया है। अगर किसीके कहने सुनने से भगवान का भजन भी किया तो सिर्फ दिखाऊ। ऐसी दशा में यहां आसन जमा कर बैठना और आखें मूंदना आदि सब व्यर्थ है। जैसाकि कहा है :—

दर्भासन पर बैठ कर माला ली कर माहिं
मन डोले बाजार में यह तो सुमरण नांहि

प्रायः लोगों का यही हाल है। कथा सुनने बैठे तो नींन्द सताती है

दो शब्द

श्री १०८ श्री मुनि ज्ञानसागर जी ने 'कर्तव्य पथ प्रदर्शन' नाम के इस ग्रन्थ की रचना करके मानव समाज पर बड़ा उपकार किया है।

मनुष्य के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु परयन्त जो भी घटनाएं घटती हैं उनके हर पहलू पर व्यापकता से मानव को अपने कर्त्तव्य पथ पर चलने की प्रेरणा इस ग्रंथ से मिलती है।

मुनि ज्ञान सागर जी वास्तव में ज्ञान के सागर हैं। आपकी विद्वता से सारा जैन समाज परिचित है। आप गृहस्थों तथा त्यागियों को जैन शास्त्रों का अध्ययन कराने में निरंतर संलग्न रहते हैं।

श्री १०८ श्री ज्ञानसागर जी (पं० भूरामल) का जन्म भारतवर्ष की वीर भूमि राजस्थान के राणोली (जयपुर) ग्राम में हुआ। आपकी पूज्य माता का नाम श्री घृतवली देवी और पिता जी का नाम श्री चतुर्भुज जी है। आप खण्डेलवाल वैश्य जाति से सम्बन्ध रखते हैं। वैसे तो आप कुमार ब्रह्मचारी हैं परन्तु अठारह वर्ष की अवस्था में अध्ययनकाल में ही नियम पूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया था। आज से १३ वर्ष पूर्व आपने गृह त्याग कर श्री दिगम्बर जैन आचार्य पूज्य श्री १०८ वीरसागर जी महाराज की सेवा में प्रवेश किया। कई वर्षों तक क्षुल्लक तथा एलक अवस्था का अभ्यास करते हुये आज से दो वर्ष पूर्व जयपुर नगर में समस्त परिग्रह का त्याग करके श्री १०८ पूज्य आचार्य श्री शिवसागरजी द्वारा दिगम्बरी दिक्षा धारण की।

आप संस्कृत के तथा जैन आगम के वड़े प्रकाण्ड पण्डित हैं। मुनि संघ में अब आप उपाध्याय के रूप में मानव कल्याण का कार्य कर रहे हैं।

चाहिये किन्तु निर्दोष वस्तुवों को भी अवश्यकता से अधिक प्रयोग में लाने से परहेज़ होना चाहिये इस प्रकारअपने इन इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को वेलगाम न दौड़ने देकर इनके लगाम रखना ही मनोनिग्रिह का मूल मन्त्र है जो कि सन्त महन्तों की संगति से प्राप्त हो सकता है। अतः सत्सङ्गी वनना ही मनुष्य का आद्यकर्तव्य माना गया है हाँ एक वालक के पास से भी इसी विषय का सवक सीखा जा सकता है। आप किसी भी वच्चे को लीजिये वह जिस चीज की तरफ देखना है टकटकी लगाकर देखता है। अगर उधर ही आप भी देखते हैं तो आपकी आँखों की पलके दस वार झपकेंगी किन्तु उसकी एक वार भी नहीं ! क्योंकि वच्चे के सन्मुख में जो चीज आती है तो वह तो उसी को अपने उपयोग में पकड़ना चाहता है कि यह क्या और कैसी है ! और किसी वात की उसे चिन्ता नहीं होती, वस इसीलिये वह उसे गौर से देखता है। ताकि उसके

दिल पर उसका प्रभाव पड़े जो कि घर कर लेता है फिर अनेक प्रयत्न करने पर भी उसका दूर हटाना कठिन हो जाता है इसीका नाम संस्कार है। लड़के को शुरू के दो चार सालों में जो शिक्षा मिलती है जिसे कि वह अपनी स्वाभाविक सरलता से ग्रहण करता है वाद में वैसी सुदृढ़ होकर रहने वाली शिक्षा अनेक वर्षों में भी उसे नहीं दी जा सकती। वाद की शिक्षा सव कृत्रिम पने को लिये हुये होतीहै। और इसी लिये आप लोगों को चाहिये कि आप अपने वच्चों के आगे कभी भूलकर भी वुरी चेष्टा और वुरी वात न करें। क्यों की वच्चे का दिल एक प्रकार का कैमरा होता है

जो कि आपकी की हुई चेष्टाओं के प्रतिबिम्बको ग्रहण करता है। बच्चे के मन में विश्वास भी नैसर्गिक होता है। उसकी माँ उसे जो भी कहे वही उसके लिये प्रमाण। जो कुछ कहानियाँ जिस रूप से उन्हें कही जाती हैं वे सब उन्हें अक्षरशः सच मालूम होती हैं। वह तो अपनी माता को ही अपना हित करने वाली मान कर उसके कहने में चलना जानता है। अपनी माता पर उसकी अटल श्रद्धा रहती है। वह उसे जैसा कहे वैसा करना जानता है और कुछ भी नहीं, बस इसी लिये उसके चित्त में व्यग्रंता न होकर एकाग्रता अधिक होती है।

बाल जीवन की विशेषता—

एक नवजात बालक भी अपने जीवन में खाना पीना सोजाना आदि अपनी अवस्थोचित बात तो करता ही है। परन्तु वह अपने सरल भाव से जो करता है और जब तक करता है फिर उसे छोड़ दूसरी बात करने लगता है तो उसी में संलग्न हो जाता है। उसे उस समय फिर पहले वाली बात के बारे की कुछ भी चिन्ता नहीं रहा करती। जब भूख लगी कि माता की स्तनों को पकड़ कर चसड़ २ चूसने लगता है किन्तु जहाँ पेट भरा कि उन्हें छोड़ कर खेलने लगता है या सो जाता है फिर भूख लगी कि उठकर दूध पीने लगता है। एवं पेट भरा कि फिर मस्त। उसे इस बात की भी चिन्ता नहीं कि यहाँ पर क्या हो रहा है और आगे क्या होने

वाला है। वह तो सिर्फ दो ही बातें जानता है खुद करना एवं बुजुर्ग लोगों का अनुकरण करना। अतः चोरी, जारी, झूठ पाखण्ड आदि बुरी बातों से यह प्राकृतिक रूप में वह परे रहता है। आप किसी बच्चे से पूछिये कि आज क्या खाया था। तो वह जैसा खाया है कहता है कि सिर्फ मट्ठे के साथ में रूखी जुवार की रोटी खाई थी क्योंकि वह इस बात से परे है कि इसे ऐसा कहने से मेरे कुटुम्ब वालों की बेइज्जती होवेगी। वह तो अपने सरल भाव से जैसा कुछ खाया है सो बतावेगा। फिर उसकी अम्मा भले ही इस बात की मरम्मत करती हो की क्या करूं, बच्चे को पेचिस हो रहा है इस लिये मुझे भी यही खाना पड़ी और इसे भी यही खिलाई। अस्तु बच्चा उपर्युक्त रूप से सरल और स्पष्ट बातें करता है। इसी लिये उसकी बोली सबको मीठी लगती है। जो भी सुनता है उसका चित्त बड़ा प्रसन्न हो उठता है। अगर उसका हिसाब सदा के लिये ऐसा ही बना रहे तो यह मनुष्यता का सौभाग्य समझना चाहिये। किंतु यह जब अपने जीवन क्षेत्र में आगे बढ़ता है और अपने माता पिताआदि को या अड़ोसी पड़ोसी को नाना प्रकार की बहाना बाजी की चालाकी भरी बातें करते हुये देखता है तो अनुकरण-शीलता के कारण आप भी वैसा ही या उनसे भी कहीं अधिक चालाक हो लेता है। भारत माता की गोद में पला हुआ होने के नाते से समाज का स्वयं-सेवक हो रहने के बदले, इन्द्रियों का दास बन कर जनता के जीवन पथ में कण्टक स्थानीय प्रमाणित होता है। औरों को घोर कष्ट पहुँचा कर भी अपने स्वार्थ की पूर्ती करने में ही

तत्पर रहना, हर एक के साथ पेचीदा बातें करके केवल अपना मतलब गांठना, दूसरे के हक को हड़प करने में कुछ भी संकोच न करना अश्लील भद्दी चेष्टायें करके अपने आपको धन्य समझना और गुरुजनों की बातों को भी ठुकरा कर अपना उल्लू सीधा करना किसी को भी अपनी चालाकी के आगे कुछ भी नहीं समझता इत्यादि रूप से एकान्त कठोरता को अपना कर प्रत्युत मानवता के बदले दानवता को स्वीकार कर बैठता है। हाँ यदि उसको शुरु से ही तुली हुई प्रमाणिक बात करने वाले महापुरुषों का संसर्ग प्राप्त होता रहे तो बहुत कुछ सम्भव है कि उपर्युक्त बुराइयों से सर्वथा अछूता रह कर दया क्षमाशील सन्तोषादि सद्गुणों का भण्डार बनते हुये वही बालक पुरुष से पुरुषोत्तम भी बन सकता है।

दया की महत्ता

किसी भी प्राणी का कोई भी तरह का कुछ भी बिगाड़ न होने पावे, सब लोग कुशलता पूर्वक अपना २ जीवन व्यतित करे ऐसी रीति का नाम दया है। दयावान का दिल विशाल होता है, उसके मन में सबके लिये जगह होती है। वह किसी को भी वस्तुतः छोटा या बड़ा नहीं मानता, अपने पराये का भी भेदभाव उसके दिल से दूर रहता है। वह सब आत्माओं को समान समझता है। तभी तो वह दूसरे का दुःख दूर करने के लिये अपने आपका बलिदान करने में नहीं हिचकिचाता है। एक बार की बात है।

कि एक हाईकोर्ट के जज साहिव अपनी मोटर में सवार होकर कचहरी को जा रहे थे। रास्ते में जाते हुये देखते हैं तो कीचड़ में एक सूवर फंसा हुआ है जो कि निकलने के लिये छटपटा रहा है। जज साहिव ने अपनी मोटर रुकवाई और खुद अपने हाथों से उस सूवर को निकालकर वाहर किया। सूवर ने अपने अङ्ग फड़फड़ाये जिससे जज साहिव के कपड़े छींटछींटा हो गये। कचहरी को देर हो रही थी। अतः उन्हीं कपड़ों को पहने हुए मोटर में वैठ कर फिर कचहरी को रवाना हो लिये। लोगों ने जव जज साहिव का यह हाल देखा तो लोग आश्चर्य में डूव गये कि आज उनका ऐसा ढङ्ग क्यों है ड्राइवर ने वीती हुई वात वताई तो सव लोग वाह २ कहने लगे। जज साहिव वोले कि इसमें मैंने वड़ी वात कौनसी की है? मैंने सूवर का दुःख दूर नहीं किया वल्कि मैंने तो मेरा ही दुःख दूर किया है। मुझसे उसका वह दृश्य देखा नहीं गया तव मैं फिर और क्या करता? ठीक ही है किसी को भी कष्ट में पड़ा देखकर दयालु पुरुष का दिल द्रवित हो उठता है। इसमें सन्देह नहीं है। वह अमरता का वरदाता होता है। जो कि अज्ञान और असमर्थ वालक को मातृभाव से उनके हित की वात कहता है। वे जो कुछ भूल खा रहे हो उसे हृदयग्राही मधुर शब्दों में उन्हें समझा कर उत्पथ में न जाने देते हुए प्रेम पूर्वक सही रास्ते पर लाने की चेष्टा करता है। ऐसा करने में कोई व्यक्ति अपनी आदत के वश होकर आभार न मानते हुए प्रत्युत उसके साथ में विरोध दिखलाते हुए उसकी किसी प्रकार की हानि भी करता है

तो दयालु पुरुष उसे भी सहन करता है परन्तु उसे मार्ग पर लाने की ही सोचता है।

सुनते ही हैं कि इंग्लैंड में होमरलेन नाम का एक विद्वान था। वह जब भी किसी असहाय, दुःखी पुरुष को देखता था तो उसका दिल पिघल जाया करता था। कोई बालक किसी भी प्रकार की बुरी आदत में पड़ रहा हो तो उसे देखकर वह विचारने लगता कि इसकी तो सारी जिन्दगी ही बरबाद हो जायेगी। किसी भी तरह से इसकी यह कुटेव दूर होकर इसका भविष्य उज्जवल होना चाहिए। बस इस विचार के वस होकर उसने एक रिपब्लिकन नाम का आश्रम खोला। जिसमें बुरी आदतों वाले बालक लाना और धीरे २ उनके जीवन को सुधारना ही उसका उद्देश्य था। एक दिन कोर्ट में एक ऐसा बालक पकड़ा गया जो कई बार चोरी कर चुका था। होमरलेन को जब पता लगा तो वह उसे वहां से अपने पास आश्रम में ले आया। परन्तु उसने तो आते ही ऊधम मचाना शुरू कर दिया। वहां के लड़कों से लड़ने लगा और उनकी पुस्तकें फाड़ने लगा तो वहां के प्रबन्धक लोग घबराये और होमरलेन से बोले कि साहेब यह लड़का तो नटखट है सारे बालकों को ही बिगाड़ देगा अतः इसे तो यहां रखना ठीक नहीं है होमरलेन बोला भाई मुझे इस पर दया आती है अगर यह यहां आकर भी नहीं सुधरा तो फिर कैसे सुधरेगा, इसका तो फिर सारा जीवन ही बरबाद हो जा-येगा खैर इसे तुम यहां नहीं रखते हो तो मुझे दो मैं इसे अपने पास रखूंगा। ऐसा कहकर जब वह उसे घर लाया तो वहां पर भी

उसका तो वही हाल । उसके कमरे की वहुमूल्य चीजों को भी वह तो वैसे ही तोड़ने फोड़ने लगा। फिर भी होमरलेन ने विलकुल मन मैला नहीं किया, वल्कि हंसते हुये बोला, कि वेटा यह घड़ी और वची है इसे भी तोड़ डालो वस यह सुनते ही उस लड़के के दिल में एकाएक परिवर्तन आगया। वह सोचने लगा कि देखो मैंने इनका इतना नुकसान कर दिया, फिर भी मेरे प्रति इनके मन में कुछ भी मलान नहीं आया, देखो ये कितने गम्भीर हृदयी हैं। और मैं कितना तूफानी। ये भी आदमी है तथा कहने के लिये तो मैं भी एक आदमी ही हूँ मुझे कुछ तो सोचना चाहिये ऐसा विचार अपने मन में करते हुये वह लड़का होमरलेन के पैरों में पड़गया और अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करने लगा, बोला कि वस मैं अव आगे किसी भी प्रकार की वदमासी नहीं करूंगा। होमरलेन वड़ा खुश हुआ और कहने लगा कि कोई वात नहीं वल्कि मुझे तो इस वात की वड़ी प्रसन्नता है कि अव तुम समझ गये हो।

मतलव यही है कि जिसका दिल दया से भीगा हुआ होता है वह किसी से भी मुंह मोड़ना नहीं जानता। वह तो अपना सव कुछ खोकर भी दुःखिया के दुःख को दूर करना चाहता है। क्योंकि उसका प्राणी मात्र के प्रति सहज स्वभाविक प्रेम होता है। अतः वह तो सवको गुणवान देखना चाहता है एवं किसीभी गुणवान को जव वह देखताहै तो उसका दिल प्रसन्नता से उमड़ उठता है जैसा कि तत्वार्थ सूत्र में है—मैत्री प्रमोद कारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्वगुणाधिक क्लिश्यमाना विनेयेषु।

जहां दया है वहां कोई दुर्गुण नहीं—

जिन बातों के होने से प्राणी प्रजा का विप्लवकारी साबित हो ऐसे हिंसा असत्यभाषण, चोरी, व्यभिचार, असन्तोष आदि को दुर्गुण समझना चाहिये। जहां दया होती है वहाँ पर दुर्गुणों का नाम लेश भी नहीं होता परन्तु जहाँ इनमें से एक भी हो वहां पर फिर दया नहीं रह सकती है।

हमारे यहाँ एक कथा आती है। कि एक राजा था उसके लड़के थे तो राजा के मरने पर वड़े लड़के को राजा और छोटे को युवराय वनाया गया। दोनों का समय परस्पर वड़े प्रेम से लगा। परन्तु संयोग वश ऐसा हुआ कि एक रोज राजा ने युवराज्ञी को नजर भर देख लिया। युवराज्ञी युवती थी और वड़ी सुन्दर थी अतः उसे देखते ही राजा का विचार वदल गया। वह उसके साथ अपनी बुरी वासना को पूरी करने की सोचने लगा। अतः उसने युवराजको तो किसी सीमान्त दुष्ट राजा पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया और युवराज्ञी को फुसलाने के लिये उसने अपनी दूती द्वारा पारितोषिक भेजा! किन्तु वह राजी न हुई। राजा ने सोचा भाई को मार दिया जाए, फिर तो यह लाचार होकर अपने आप मेरा कहना करेगी। वसन्तोत्सव का षडयन्त्र रचाया सव लोग अपनी २ पत्नियों को लेकर वन विहार को गये। युवराज भी युवराज्ञी के साथ अपने वगीचे में पहुँच गया और सोचा कि आज की रात यहाँ ही आराम से काटी जावे। उसे क्या पता था कि रङ्ग में भङ्ग

होने वाला है। राजा के मन चाहती बात हुई अतः वह घोड़े पर चढ़ कर युवराज के विश्राम स्थान की ओर रवाना हुआ पहरा लग रहा था। पहरेदारों ने राजा को आगे बढ़ने से रोक कर युवराज को सूचना दी कि महाराज आप के पास आना चाहते हैं। युवराज बोले आने दो। युवराज्ञी समझ गई और बोली प्रभो ! आप क्या कर रहे हैं ! होशियार रहिये, आपके भाई साहेब का विचार मुझे आपके प्रति ठीक प्रतीत नहीं हो रहा है। युवराज ने उसके कहने पर भी ध्यान नहीं दिया। राजा साहेब आये और उचित स्थान पर युवराज के पास बैठ गये। युवराज बोला भाई साहेब आज इस समय कैसे आना हो गया, ऐसा कौन काम आ पड़ा, आपने आने का कष्ट क्यों किया, मुझे सूचित कर देते तो मैं ही आपके पास आ सकता था। राजा बोला बताऊंगा परन्तु मुझे बड़ी जोर से प्यास लग रही है अतः पहिले पानी पिलाओ। युवराज को क्या पता था कि इनके अन्तरङ्ग में क्या है ! वह तो एकान्त भ्रातृ स्नेह को लिये हुये था अतः बड़े भाई को पानी पिलाने के लिये गिलास उठाने को लपका कि पीछे से राजा ने उसकी गरदन पर कटार मार दिया, और उन्हीं पैरों उलटा लौट चला। सिपाहियों ने हल्ला मचा कर उसे पकड़ना चाहा, मगर युवराज्ञी ने सोचा कि स्वामी मरणासन्न हैं अगर हम लोग इसी धर पकड़ में लगे रहे तो सम्भव है कि स्वामी का अन्त समय बिगड़ जावे अतः उसने सिपाहियों को ऐसा करने से रोका और अपने दिल को कड़ा करके समयोचित्त अन्तिम संदेश-हे स्वामिन्इस संसार में अनादिकाल से जन्म-मरण करते रहने वाले इस शरीर धारी की अपनी भूल ही इसका शत्रु है और स्वयं सम्भल

कर चलना ही इसका। मित्र है बाकी के ये बस दुनियां के लोग तो परिस्थिति के वश में होकर जो आज शत्रु है वही कल मित्र और मित्र से फिर शत्रु होते दिखाई देते हैं। जो भाई साहेब आप के लिये जान तक देने को हर समय ही तैयार रहते थे आज आपकी जान के गाहक बन गये, इस ऐसा होने में यदि विचार कर देखा जावे तो प्रधान निमित्त मैं ही हूँ मेरे ही रूप के पीछे पागल होकर उन्होंने ऐसा किया है। अतः एक तरह से देखा जावे तो मैं ही आप की शत्रु हूँ, जिसको कि आप अपनी समझ रहे हैं। वस्तुतः कोई किसी का शत्रु या मित्र नहीं है। न कोई अपना है और न कोई पराया। सब लोग अपने २ कर्मों के प्रेरे हुये यहां से वहां चक्कर काट रहे हैं। कोई किसी का साथ देने वाला नहीं है। औरों की तो बात ही क्या इस बन्दे का यह शरीर भी यहां का यहीं रह जाता है, जबकि वह परलोकगमन की सोचता है। हाँ उस समय यदि भगवान् का स्मरण करता है तो वह स्मरण अवश्य उसके साथ रहता है, एवं गढ्ढे में गिरने से बचाता है। अतः अब आप तो क्या अच्छे और क्या बुरे सभी प्रकार के संकल्पों को त्याग कर परमात्मा के स्मरण में मनको लगाइये, और इस नश्वर शरीर का प्रसन्नता पूर्वक त्याग कर जाइये। जैसे कि सर्प कांचली को छोड़ जाता है, इस प्रकार कह कर अन्तिम श्वास तक नमस्कार मन्त्र उसे सुनाती रही। उसने भी भगवान के चरणों में मन लगा कर इस पामर शरीर का परित्याग किया, एवं वह दीव्य देहधारी देव बना और उसी युवराज के रूप में पानी लेकर राजा के पास आया तथा बोला कि लो पानी पीलो चले क्यों आये, तुम

तो प्यासे थे ? परन्तु वस्तुतः तुम पानी के प्यासे न हो कर जिस बात के प्यासे हो वह तुम्हारी प्यास, जो मार्ग तुमने अपना रखा है उससे नहीं मिट सकती, देखो तुमने मेरे कटार मार दिया था। वह भी उस सती के सन्देश मन्त्र से ठीक होगया है। जिस महासती को लक्ष्य कर तुम बुरी वासना के शिकार बन रहे हो। अतः अब तुमको चाहिये कि तुम सन्तोष धारण करो, उस सती के चरण छूवो, एवं भगवान का नाम जपो बस इसमें तुम्हारा कल्याण है। इस पर होस में आकर राजा ने भी अपनी करणी का प्रायश्चित किया और ठीक मार्ग स्वीकार किया।

मतलब यह कि दया के द्वारा ही मनुष्य माननीय बनता है। दया ही परम धर्म है जिसको कि अपनाकर यह शरीरधारी ऊपर को उठता है। परन्तु जो कोई भी दया को भूल जाता है या अंह-कार के वश होकर उसकी अवहेलना करता है वह जीव इस दुनियां में घृणा का पात्र बन जाता है जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं:—

दया धर्म का मूल है, पापमूल—अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण॥

दयाका सहयोगी विवेक—

हां यह बात भी याद रखने योग्य है कि दया के साथ में भी विवेक का पुट अवश्य चाहिये। दया होगी और विवेक न होगा प्रत्युत उसके ही स्थान पर मोह होगा तो वह उस विश्व सन्जीविनी

दया को भी संहारकारिणी बना डालेगा। मान लीजिये कि आपके बच्चे को कफ, खाँसी का रोग होगया, आप उसे आराम कराना चाहते हैं और वैद्य के पास से दवा भी दिला रहे है, मगर बच्चे को दही खाने का अभ्यास है, वह दही मांगता है, नहीं देते हो तो रोता है, छटपटाता है, मानता नहीं है, तो क्या आप उसे दही खाने को दे देगें ? अपितु नहीं देंगे, क्योंकि दही खिला देने से उसका रोग बढ़ेगा यह आप जानते हैं। फिरभी आपको उस बच्चे के प्रति कहीं मोह आगया तो सम्भव है कि आप उसे छटपटाता हुआ देख कर उपर्युक्त बात को भूल जावें तथा उसे दही खाने को दे देवें तो यह आपकी दया के बदले उस बच्चे के प्रति दुर्दया ही कही जावेगी उसके स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली ही होगी।

रावण को मार कर श्री रामचन्द्र जी महाराज जब सीता महाराणी वापिस लाये और घर में उसे रखने लगे, तो लोगों ने इस पर आपत्ति की। श्री रामचन्द्र जी यह जानते अवश्य थे कि सीता निर्दोष है इसमें कोई भी शक नहीं, फिर भी बनवास का आदेश दिया ताकि वन के अनेक संकट सह कर भी अन्त में उसे परीक्षोतीर्ण होना ही पड़ा। अगर श्री रामचन्द्र जी महाराज ऐसा न करते तो क्या आम लोगों के दिल में सीता महाराणी के लिये यह स्थान हो सकता था ? श्री रामचन्द्र जी की गौरव कथा जिस महत्ता से आज गाई जारही है वह कभी भी सम्भव थी ? कि एक साधारण आदमीकीआवाज पर श्री रामचन्द्रजी ने अपने प्राणोंसे प्यारी सीता का परित्याग कर दिया, ओह कितना ऊंचा स्वार्थ त्याग है। परन्तु

वात यहां ऐसी थी, श्री रामचन्द्र जी महापुरुष थे, उनकी निगाह में सभी प्राणी अपने समान थे। वस इसी लिए तो सव लोग आज भी उन्हें याद करते हैं।

अभिमान का दुष्परिणाम—

कुछ भी न कर सकने वाला होकर भी अपने आपको करने वाला मानना अभिमान है। वस्तुतः मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ होता है वह अपने २ कारण कलाप के द्वारा होता है। हाँ संसार के कितने कार्य ऐसे होते हैं जिनमें इतर कारणों की ही समान मनुष्य का भी उनमें हाथ होता है। एवं जिस कार्य में मनुष्य का हाथ होता है तो वह उसे अपनी विचार शक्ति के द्वारा प्रजा के लिये हानि कारक न होने देकर लाभप्रद वनाने की सोचता है, वस इसी-लिये उसे उसका कर्ता कहा जाता है। फिर भी उस काम का होना, न होना या अन्यथा होना यह उसके वश की वात नहीं है। मान लीजिये कि एक किसान ने खेती का काम किया-जमीन को अच्छी तरह जोता, खाद भी अच्छी लगाई, वीज अच्छी तरह से वोया, सिंचाई ठीक तौरसे की, और भी सव सार सम्भाल की और फसल अच्छी तरह पक कर तैयार हो गई, किन्तु एकाएक कुहर पड़ा ताकि किया कराया सव कुछ वर्वाद। सारी खेती जलभुन कर मिट्टी में मिल जाती है। ऐसी हालत में अगर किसान यह कहे कि मैं ही खेती करने वाला हूँ, अन्न को उपजाता हूँ तो यह उसका अभिमान गलत विचार है। इस गलत विचार के पीछे स्वार्थ की वदवू रहती

है यानि जब कि मैं खेती करने वाला हूँ तो मैं ही उसका अधिकारी हूँ, भोक्ता हूं, किसी दूसरे का इस पर क्या अधिकार है। इस प्रकार का संकीर्णभाव उसके हृदय में स्थान किये हुये रहता है। इस संकीर्ण भाव के कारण से ही प्रकृति भी उसका साथ देना छोड़ कर उस से विरुद्ध हो रहती है, ताकि जी तोड़ परिश्रम करने पर भी सफलता के बदले में प्रायः असफलता ही उसके हाथ लगा करती है। हाँ जो निरभिमानी होता है, वह तो मानता है कि यह मेरा कर्तव्य है अतः मैं करता हूं, मुझे करना भी चाहिये, इसका फल किसको कैसा, क्या होगा, इसकी उसे चिन्ता ही नहीं होती। एक समय की बात है कि किसी नगर का राजा घोड़े पर चढ़कर वायु-सेवन के लिये रवाना हुआ, नगर के बाहर आया तो एक बूढा माली अपने बगीचे में नूतन पेड़ लगा रहा था। यह देखकर राजा बोला कि बूढ़े तू जो ये पेड़ लगा रहा है सो कब जाकर खड़े होंगे। क्या तू इनके फल खाने के लिए तब तक बैठा ही रहेगा? बूढ़े ने उत्तर दिया कि प्रभो इसमें फल खानेकी कौनसी बात है? यह तो मेरा कर्तव्य है, अतः मैं कर रहा हूँ। मैंने भी तो मेरे बुजर्गों के लगाये हुये पेड़ोंके फल खाये हैं, अतः इन मेरे लगाये हुये पेड़ों के फल मेरे से आगे वाले लोग खावें यही तो प्रकृति की मांग है। इस पर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और पारितोपिक रूप में एक मुहर उसे देते हुये धन्यवाद दिया। मतलब यह कि कर्तव्यशील निरभिमानी आदमी जो कुछ करता है उसे कर्तव्य समझ कर विवेक पूर्वक करता है, उसे फलकी कुछ चिन्ता नहीं रहती। इसी उदाहरण को लेकर उसे उसमें सफलता भी आशातीत प्राप्त होती है।

श्री रामचन्द्रजी को पता लगा कि सीता रावण के घर पर है तो बोलेकि चलो उसको लाने के लिये। इस पर सुग्रीव आदि ने कहा कि प्रभो ! रावण कोई साधारण आदमी नहीं है। उससे प्रतिद्वन्दिता करना आग में हाथ डालना है। श्री रामचन्द्रजी ने कहा, कुछ बात नहीं। परन्तु सीता को आपत्ति में पड़ी देख कर भी हम चुप बैठे रहें, यह कभी नहीं हो सकता है। हमें अपना कर्तव्य अवश्य पालन करना ही चाहिये। फिर होगा तो वही जो कि प्रकृति को मन्जूर है। श्री रामचन्द्रजी की इस सहज सरलता के द्वारा उनके लिये सभी तरह का प्राक्रम अपने आप अनुकूल होता चला गया। उधर उनके विपक्ष में रावण यद्यपि वस्तुतः बहुत बलवान और शक्तिशाली भी था, परन्तु वह समझता था कि मुझे किसकी क्या परवाह है, मैं अपने भुजबल और बुद्धि कौशल से जैसा चाहूं वैसा कर सकता हूं। बस इसी घमण्ड की वजह से उसकी खुद की ही ताकत उसका नाश करने वाली बन गई। इस बात का पता हमें रामायण पढ़ने से लगता है। अतः मानना ही चाहिये कि अभिमान के बराबर और कोई दुर्गुण नहीं है, जिसको कि पीछे अन्धा होकर यह मनुष्य अपने आपको ही खो बैठता है।

परिस्थिति की विषमता

किसी भी देश और प्रान्त में ही नहीं किन्तु प्रत्येक गांव तथा घर में भी आज तो प्रायः कलह, विसंवाद, ईर्षा, द्वेष आदि का आतङ्क छाया हुआ पाया जा रहा है। इधर से उधर चारों तरफ बुराइयों का वातावरण ही जोर पकड़ता जा रहा है। इस लिये मनुष्य अपने जीवन के चौराहे पर किङ्मिमूढ हुआ खड़ा है। वह किधर जावे और क्या करे ? सभी तरफ से हिंसा की भीषण ज्वालायें आकर इसे भस्म कर देना चाहती हैं। असत्य के खारे पानी से सन कर इसका कलेजा पुराने कपड़े की तरह चीर चीर होता हुवा दीख रहा है। लूट खसोट के विचार ने इसके लिये हिलने को भी जगह नहीं छोड़ी है। व्यभिचार की बदबू ने इसका नाक में दम कर रखा है। असन्तोष के जाल में तो यह बुरी तरह जकड़ा हुआ पड़ा है। घर में और बाहर में कहीं भी इसे शान्ति नहीं है। क्योंकि भौतिकता की चकाचौंध में आकर इसनें अपना विश्वास गला डाला है। अपनी चपलता के वश में होकर यह किसी के लिये भी यह विश्वास का पात्र नहीं रहा है। और न इसे ही कोई ऐसा दीखता है जिसके कि भरोसे पर यह धैर्य धारण कर रह सके। सांप से सबको डर लगता है कि वह कहीं किसी को काट न खावे, तो सांप भी हर समय यों भयभीत बना ही रहता है कि कोई मुझे मार न डाले। बस यही हाल आज मनुष्य का मनुष्य के साथ में हो रहा है। एक को दूसरा हड़प जाने वाला प्रतीत होता है। अतएव मनुष्य, मनुष्य के पास जाने में संकोच करता है। हां किसी

भी वृक्ष के पास वह खुशी से जा सकता है, क्योंकि उसे उस पर विश्वास है कि वह भूखे को खाने के लिए फल, परिश्रान्त को ठहरने के लिए छाया, शयन करना चाहने वाले को फूल पत्तों की सेज और टेक कर चलने आदि के लिए लकड़ियाँ देगा। वह मनुष्य की भांति धोखे में डालने वाला नहीं है अपितु सहज रूप से ही परोपकारी है। बस इसी विचार को लेकर मनुष्य वृक्ष के पास जाने में संकोच नहीं करता। परन्तु मनुष्य, मनुष्य के पास न जाकर उससे दूर रहना चाहता है। क्योंकि वह सोचता है कि आज का मनुष्य दूसरे का बुरा करने का आदि बना हुआ है। उसके पास जाने पर मेरा बिगाड़के सिवाय सुधार होने वाला नहीं है, मेरी कुछ न कुछ हानि ही होगी अपितु कुछ लाभ होने वाला नहीं है। बस इसी लिये वह उससे दूर भागता है। परन्तु गाड़ी का एक पहिया जिस प्रकार दूसरे पहिये के सहयोग बिना खड़ा नहीं रह सकता उसी प्रकार दुनियादारी का मानव भी किसी दूसरे मानव के सहयोग से रहित होकर कैसे जीवित रह सकता है? अतः मानव को अपना जीवन भी आज दूभर बना हुवा है।

स्वार्थपरता सर्वनाश की जड़ है

ऊपर लिखा गया है कि मनुष्य का जीवन एक सहयोगी जीवन है। उसे अपने आपको उपयोगी साबित करने के लिये औरों का साथ अवश्यंभावी है, जैसे कि धागा धागों के साथ में मिलकर चादर कहलाता है और मूल्यवान बनता है। अकेला धागा किसी गिनती में नहीं आता, वैसे ही मनुष्य भी अन्य मनुष्यों के साथ में

अपना सम्बन्ध स्थापित करके शोभावान बनता है। यानी कि अपना व्यक्तित्व सुचारू करने के लिये मनुष्य को सामाजिकता की जरूरत होती है। अतएव प्रत्येक मानव का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने आपके लिये जितना सुभीता चाह रहा हो उससे ना कहीं अधिक सुभीता औरों के लिये देने और दिलवाने की चेष्टा करे। परन्तु आज हम देख रहे हैं कि आज के मानवकी प्रगति इससे विलक्षण है। वह समाज में रह कर भी समाज की कोई परवाह नहीं करता है उसे तो सिर्फ अपने आपकी ही चिन्ता रहती है। भूख लगी कि रोटियों की तलाश में दौड़ता है, प्यास लगी तो पानी पीना चाहता है। जहाँ खाना खाया, पानी पीया और मस्त। फिर लेट लगाने की सोचता है। वह क्या यह भी सोचता है कि कोई और भी भूखा होगा? बल्कि आप खा चुका हो और रोटियाँ शेष बच रही हों एवं भूखा भिखारी सम्मुख में खड़ा होकर खाने के लिए माँग रहा हो तो भी उसे न देकर आपही उन्हें शाम को खा लेने की सोचता है।

कहो भला ऐसी खुदगर्जी का भी कहीं कोई ठिकाना है। जिसका की शिकार आज का अधिकाँश मानव है। अपनी दो रोटियों में से एक चौथाई रोटी भी किसी को दे दूं सो तो बहुत ऊंची बात है प्रत्युत यह तो दूसरे के हक की रोटी को भी छीन कर हड़प जाना चाहता है। इसी खुदगर्जी की आग में आज का मानव स्वयं जल कर भस्म होता हुआ देखा जा रहा है।

एक समय की बात है कि एक साधु को मार्ग में गमन करते

हुये चार वटेऊ मिले। साधु ने कहा भाइयो! इधर मत जाना। क्योंकि इधर थोड़ी दूर आगे जाकर वहां पर मोत है किन्तु उसके कहने पर उन लोगों ने कोई ध्यान नहीं दिया। अपनी धुन में आगे को चल दिये। कुछ दूर जाकर देखा तो असरफियों का ढेर पड़ा था। उसे देख कर वे बड़े खुश हुए, बोले कि उस साधु के कहने को मान कर हम लोग वहीं रुक जाते तो यह निधान कहां पाते ? इसी लिये तो हम कहते हैं कि इन साधुओं के कहने में कोई न आवे। खैर ! अपने को चलते २ कई दिन हो गये हैं भूख सता रही है। अतः इनमें से एक असरफी लेजा कर एकआदमी इस पास वाले गांव में से मिठाई ले आवे। उसे खाकर फिर इन शेष असरफियों के बराबर चार हिस्से करके एक एक हिस्सा लेकर प्रसन्नता पूर्वक घर को चलेंगे।

अब जो मिठाई लेने गया उसने सोचा कि मैं तो यहीं पर खालू और अब शेप मिठाई में जहर मिला कर ले चलू ताकि इसे खाते ही सब मर जावें तथा सब असफरियां मेरे ही लिये रह जावें। उधर उन लोगों ने विचार किया कि आते ही उसे मार डालना चाहिये ताकि इस धन के तीन हिस्से ही करने पड़ें। एवं जब वह आया तो उन तीनों ने उसके माथे पर लट्ठ जमाया, जिससे वह मर गया और उसकी लाई हुई मिठाई को खाकर वे तीनों भी मर गये। असरफियां वहाँ की वहाँ ही पड़ी रह गईं।

बन्धुओ ! यही हाल आज हम लोगों का हो रहा है। हम बांट कर खाना नहीं जानते, सिर्फ अपना ही मतलब गाँठना चाहते हैं।

और इस खुदगर्जी के पीछे मगरूर होकर सन्तों, महन्तों की वाणी को भी भुला बैठते हैं। इसीलिये पद पद--पर आपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है।

श्रावक की सार्थकता

श्रावक शब्द का सीधा सा अर्थ होता है, सुनने वाला। एवं सुनने वाले तो वे सभी प्राणी हैं जिनके कि कान हैं। अतः ऐसा करने से कोई ठीक मतलब नहीं निकलता। हम देखते हैं कि किसी भी पंचायत में या न्यायालय में कोई पुकारने वाला पुकारता है। उसकी पुकार पर ध्यान पूर्वक विचार करके यदि उसका समुचित प्रबन्ध नहीं किया जाता है तो वह कह ऊठता है कि यहां पर किसकी कौन सुनने वाला है ? कितना भी क्यों न पुकारो। मतलब उसका यह नहीं कि वहां सभी बहरे हैं, परन्तु सुनकर उसका ठीक उपयोग नहीं, पुकारने वाले की पीड़ा का योग्यरीति से प्रतिकार नहीं बस इसीलिये कहा जाता है कि कोई सुनने वाला नहीं।

हमारे पूर्वजों ने भी उसी को श्रावक कह पुकारा है, जो कि आर्ष वाक्यों को न्यायालय के नियमों के रूप में अटल मान कर श्रद्धा पूर्वक स्वीकार किये हुए हों, जिसका हृदय विचारपूर्ण भावना से ओत-प्रोत हो, अतः किसी को भी कोई भी प्रकार की विपत्ति में पड़ा हुआ पाकर उसका वहां से उद्धार किये विना जिसे कभी चैन नहीं हो एवं अपने तन, मन और धन के द्वारा सव तरह से समाज सेवा के लिये हर समय तैयार रहने वाला हो।

वह खुद अनीति-पथ में पैर रखे यह तो कभी सम्भव ही नहीं हो सकता, प्रत्युत वह औरों को भी कुमार्ग में जाते हुये देखता है तो आश्चर्य में डूब रहता है कि यह ऐसा क्यों हो रहा है? इस प्रकार मधुर और कोमल दिल वाला जो कोई हो जाता है वही श्रावक कहलाता है। भले ही वह परिस्थिति के वश होकर अपना कायिक सम्बन्ध कुछ लोगों के साथ में ही स्थापित किये हुए हो फिर भी अपनी मनोभावना से सब लोगों को ही नहीं अपितु प्राणीमात्र को अपना कुटुम्ब समझता है। अतः किसी का भी कोई विगाड़ कर देना या हो जाना उसकी निगाह में बहुत बुरी बात होती है। हाँ, वह सन्मार्ग के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धावान होता है। अतः सन्मार्ग पर चलने वालों पर उसका विशेष अनुराग हुवा करता है। एवं वह हर तरह से उनकी उपासना में निरत रहता है। इस लिये वह उपासक भी कहा जाता है।

उपासक का प्रशमभाव

जैसा कि महात्माओं के मुंह से उसने सुना है, उसके अनुसार वह मानता है कि आत्मत्व के रूप में सभी जीव समान हैं, सबमें जानपना विद्यमान है। अव्यक्त रूप में सभी प्रमात्मत्व को लिये हुये हैं, प्रभुत्व शक्तियुक्त हैं। एवं किसी के भी साथ में विरोध, वैमनस्य करना परमात्मा के साथ में विरोध करना कहा जाता है। प्रमात्मा से विरोध करना सो अपने आपके साथ ही विरोध करना है। अतः किसी के भी साथ में वैर विरोध करने की भावना ही उसके

मन में कभी जागृत ही नहीं होती। उसके हृदय में तो सम्पूर्ण प्राणियों की उपयोगिता को समझते हुए प्रेम के लिए स्थान होता है। बल्कि वह यह तो मानता है कि दुनियां का कोई पदार्थ अनुपयोगी नहीं है। यह बात दूसरी कि मनुष्य उससे अनभिज्ञ हो। अतः अपनी चपलता के वश में होकर उसका दुरुपयोग कर रहा हो।

एक बार की बात है—राजा और राणी अपने महल में सुकोमल सेज पर विश्राम कर रहे थे। इतने में राजा की नजर एक मकड़े पर पड़ी। जोकि वहां महल की छत में अपने सहजभाव से जाला तन रहा था। राजा को उसे देख कर गुस्सा आया कि देखो यह वेहूदा जन्तु मेरे साफ सुथरे महल को गन्दा बना रहा है। अतः उसे मारने के लिए राजा ने तमंचा उठाया। परन्तु शीघ्रता के साथ उसका हाथ पकड़ कर राणी बोली, प्रभो! यह आप क्या कर रहे हैं? आप इसे वेकार समझ रहे हैं, फिर भी अपनी अपनी जगह सभी काम आने वाले हैं। समय पड़ने पर आपको इस बात का अनुभव होगा।

रानी के इस प्रकार मना करने पर राजा मान गया, किन्तु राजा के मन में यह शंका बनी ही रही कि यह भी कोई काम में आने वाला है? अस्तु: दूसरे ही रोज राजा अपने मन्त्री आदि के साथ में घूमने को निकला तो पिछाड़ी से आकर एक कुत्ते ने राजा की जांघ में काट खाया। वैद्य से पूछा गया कि अब क्या करना चाहिये? जवाब मिला कि यदि कहीं मकड़ी का जाला मिल जावे तो उसे लाकर इस घाव में भर दिया जावे। बस वही इसकी एक

आप भले ही थोड़ी देर के लिए भूखा प्यासा रह सकता है परन्तु अपने साथी को भूखा प्यासा रखना या रहने देना इसके लिये अन-होनी बात है। बस इसी का नाम सहानुभूति है। जिसके कि बल पर मनुष्य सबका प्यारा और आदरणीय समझा जाता है। हां, यदि मनुष्य में सहानुभूति न हो तो फिर वह पशु से भी भयंकर बन जाता है। क्रूर से क्रूर सिंह भी प्रजा में इतना विपल्व नहीं मचा सकता जितना कि सहानुभूति से शून्य होने पर एक मनुष्य कर जाता है। सिंह तो क्रूरता में आकर दो चार प्राणियों का ही संहार करता है किन्तु मनुष्य जब सहानुभूति को त्याग कर एकान्त स्वार्थ बन जाता है तो वह सैकड़ों, हजारों आदमियोंका संहार कर डालता है। कपट वचन के द्वारा लोगों को धोके में डालकर बरबाद कर देता है। लोगों की प्राणों से प्यारी जीवन निर्वाह योग्य सामग्री को भी लूटखसोट कर उन्हें दुःखी बनाता है। मनचलेपन में आकर कुलीन महिलाओं पर बलात्कार करके उनके शीलरत्न का अपहरण करता है। भूतलभर पर होने वाले खाद्य पदार्थ वगैहर पर अपना ही अधिकार जमाकर सम्पूर्ण प्रजा को कष्ट में डाल देता है।

हिंसा का स्पष्टीकरण

इस जीवको मारदूं, पीटदूं, या यह मरजावे, पिट जावे, दुःख पावे इस प्रकार के विचार का नामभाव हिंसा है और अपने इस विचार को कार्यान्वित करने के लिये किसी भी तरह की चेष्टा करना द्रव्य-हिंसा है। भावहिंसा पूर्वक ही द्रव्यहिंसा होती है। विनाभाव हिंसा के द्रव्यहिंसा नहीं होती और जहां भावहिंसा होती है वहां द्रव्यहिंसा

का नाम लेकर अपने को गौरवान्वित समझती है। हम भी यदि अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि हम भी अपने अन्तरङ्ग में सदाचार को स्थान दें।

सहानुभूति

दृष्टिपथ में आने वाले शरीरधारियों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) मनुष्य (२) पशु पक्षी। इनमें से पशु पक्षी वर्ग की अपेक्षा से आम तौर पर मनुष्यवर्ग अच्छा समझा जाता है, सो क्यों? उसमें कौनसा अच्छापन है? यही यहाँ देखना है। खाना, पीना, नींदलेना, डरना डराना और परिश्रम करना आदि बातें जैसी मनुष्य में हैं वैसी ही पशु पक्षियों में भी पाई जाती है। फिर ऐसी कौनसी बात है कि जिससे मनुष्य को पशु पक्षियों से अच्छा समझा जाता है।

बात यह है कि मनुष्यमें सहानुभूति होती है, जिसका कि पशु-पक्षियों में अभाव होता है। पशु को जब भूख लगती है तो खाना चाहता है और खाना मिलने पर पेट भर खा लेता है। उसे अपने पेट भरने से काम रहता है। और उसे अपने साथियोंका कुछ फिकर नहीं होता। उसकी निगाह में उसका कोई साथी ही नहीं होता जिसकी कि वह अपने विचार में कुछ भी अपेक्षा रक्खे। मनुष्य का स्वभाव इससे कुछ भिन्न प्रकार का होता है। वह अपनी तरह से अपने साथी की भी परवाह करना जानता है। यदि खाना मिलता है तो अपने साथी को खिला कर खाना चाहता है। वस्त्र भी मिलता है तो साथी को पहनाकर फिर आप पहिनना ठीक समझता है।

भड़भूंजे के पास गया तो जाते ही उसका काम तमाम हो गया।

वन्धुओ ! व्यर्थ की ईर्षा के वश होकर मन्त्री पराये लड़के को मारना चाहता था तो उसका खुद का प्राणों से प्यारा लड़का मारा गया। यही सोच कर उपासक पुरुप किसी भी दूसरे के लिये कुछ भी बुरा विचार कभी भी नहीं करता है। सच्चरित्रता वृत्त हो और उसकी छाया न हो तो उसका होना बेकार है। नदी में यदि जल न हो तो वह नदी भी सिर्फ नाम मात्र के लिये है। उसी प्रकार मनुष्य में अगर सच्चरित्रता नहीं तो उस मनुष्य का भी जीवन निःसार ही होता है। चरित्रहीन मानव का जीवन सुगंधहीन फूल जैसा है।

मकान का पाया बहुत गहरा हो, दीवारें चोड़ी और सङ्गीन हों, रङ्ग रोगन भी अच्छी तरह से किया हुआ हो और सभी बातें तथा रीति ठीक हो, परन्तु ऊपर में यदि छत नहीं हो तो सभी बेकार। वैसे सदाचार के बिना मनुष्य में बलवीर्यादि सभी बातें होकर भी निकम्मी ही होती है। देखो रावण बहुत पराक्रमी था। उसके शारीरिक बल के आगे सभी कायल थे। फिर भी वह आज निन्दा का पात्र बना हुआ है। हम देख रहे हैं कि हर एक आदमी अपने लड़के का नाम राम तो बड़ी खुशी के साथ रख लेता है, किंतु रावण का नाम भी सुनना पसन्द नहीं करता, सो क्यों ? इस पर सोच कर देखा जावे तो एक ही कारण प्रतीत होता है कि रावण के जीवन में दुराचार की बदबू ने घर कर लिया था। जिससे कि रामचन्द्रजी हजारों कोस दूर थे, किन्तु सदाचार को अपने हृदय का हार बनाये हुये थे। यही बात है कि सारी दुनियां आज श्रीरामचंद्रजी

राजापने का सम्बन्ध जभी तक है जब तक की यह ताज मेरे सिर पर है, जिसके कि रहने या न रहने का पल भर का भी कोई भरोसा नहीं है। तुम लोग व्यर्थ ही इसे क्यों हंसते हो? यह लड़का बड़ा बुद्धिमान है। मैं मेरे मन्त्री का उत्तराधिकार इसे देता हूं। जब तक ये मन्त्री जी हैं तब तक हैं, इनके बाद में यही मेरा मन्त्री होगा। ऐसा सुनते ही मन्त्री के दिल को बड़ी चोट पहुँची। वह सोचने लगा कि हाय, यह तो बहुत बुरा हुआ। यह मन्त्री बनेगा तो फिर मेरा जायन्दा लड़का तो ऐसे ही रह गया, वह क्या करेगा? क्या वह इसका पानी भरेगा? अतः इसे अब मार डालना चाहिये। इस प्रकार विचार कर वह एक भड़भूंजे से मिला और बोला कि मैं अभी चने देकर एक लड़के को भेजता हूं सो तुम उसको भाड़ में झोंक देना। भड़भूंजा यह सुन कर यद्यपि कुछ संकोच में पड़ा, क्योंकि इस तरह से एक बेकसूर बच्चे को आग में झुलस देना तो घोर निर्दयता है। परन्तु वह बेचारा भड़भूंजा था, और इधर मन्त्री का कहना था। अगर उसका कहना न करे तो रहें कहां? मन्त्री ने जाकर उस लड़के से कहा कि आज मुझे भूंगड़े खाने की जी में आ गई, तुम जाओ और उस भड़भूंजे से ये चने भुंजवा लाओ। लड़का तो आज्ञाकारी था वह चने लेकर रवाना हुआ। उधर उस मन्त्री का जायन्दा लड़का मिल गया, वह बोला भैया तुम कहां जा रहे हो? पहला लड़का बोला–पिताजी ने चने दिये हैं सो भुंजवाने जा रहा हूँ। इस पर दूसरा लड़का—तुम यही ठहरो इन लड़कों के साथ में मेरी जगह गेंद खेलो, इन्हें मात दो। लाओ चने मैं भुंजवा लाता हूं, ऐसा कह कर उसके हाथ से चने छीन कर दौड़ पड़ा और

मीठा होता है। सिंह जोकि लोगों को वर्बाद करने पर उतारू होता है तो वह खुद ही बरबाद होकर जंगल के एक कोने में छिप कर रहता है। गाय जोकि दूध पिला कर लोगों को आबाद करना चाहती है इसीलिये वह लोगों के द्वारा आबादी को प्राप्त होती है। लोग उसका बड़े प्यार के साथ में पालण-पोषण करते हुए पाए जाते हैं। हम देखते हैं कि जो औरों के लिये गढा खोदता है वह स्वयं नीचे को जाता है किन्तु महल चिनने वाला विश्वकर्मा ऊपर को चढता है। इससे हमें समझ लेना चाहिये कि जो दूसरों का बुरा सोचता है वह खुद बुरा बनता है, किन्तु जो दूसरों के भले के लिये प्रयत्न करता है वह भलाई पाता है। एक समय की बात है-एक राज मन्त्री था वह हवाखोरी को निकला तो एक जगह कुछ लड़के खेलते हुये मिले। उन सब में एक लड़का बहुत चतुर और बुद्धिमान तथा सुलक्षण था। अतः उसे बुलाकर राजमंत्री अपने पास पुत्रभाव से रखने लगा। थोड़े दिनों के बाद प्रसङ्ग पाकर राजा ने मन्त्री से पूछा कि बताओ इस दुनियां का रङ्ग कैसा है और इसके साथ में मेरा कब तक, कैसा, क्या सम्बन्ध है? जिसको सुनकर मन्त्री घबराया, उसे इसका कुछ भी उत्तर नहीं सूझ पड़ा। परन्तु लड़का दौड़ा और एक पचरंगे फूलों का गुलदस्ता लाकर उसने राजा के आगे रख दिया, एवं राजा के सिर पर जो ताज था उसे लेकर झट ही उसने अपने सिर पर रखलिया। इस पर लोग हंसने लगे किन्तु राजा ने उन्हें समझाया कि लड़के ने बहुत ठीक कहा है कि जैसे इस गुलदस्ते में पांच रङ्ग के फूल हैं वैसे ही यह दुनियाँ भी पंच परिवर्तन रूप पंचरंगी है। और इस दुनियाँ के साथ में मेरा

हुई समझता है। अतः जब तक उसे दूर नहीं हटा देता तब तक उसे विश्राम कहां? भाण्डों ने श्रीपाल को जब अपना भाई बेटा कह कर बतलाया तो मदनसुन्दरी के पिता ने रुष्ट होकर उनके लिये सूली का हुक्म लगा दिया, तो वे सहर्ष सूली पर चढ़ने को तैयार हो गये। परन्तु जब सत्य बात खुल गई और राजा को पता चला कि भाँडों ने धवल सेठ के बहकाने से झूठी बात बनाई है। तब फिर उसने अपने पूर्व आदेश को बदल कर उन भाण्डों के लिये कत्ल का हुक्म दिया, जिसे सुन कर श्रीपाल कुमार कांप गये और बोले कि हे प्रभो! आप क्या कर रहे हैं? जो कि इन बेचारों के लिये ऐसा कह रहे हैं। इनका इसमें क्या अपराध हुआ है? ये तो खुद ही गरीबी से दबे हुये हैं, ताकि गरीबी के बोझ को हल्का करने के लिये इन्होंने ऐसा करना स्वीकार कर रखा है। जो बेचारे आर्थिक संकट के सताये हुये हैं, उन्हें प्रजा के स्वामी कहला कर भी आप और भी सतावें, मरे हुओं को मारें, यह तो मेरी समझ में घोर अन्याय है। प्रत्युत इसके आपकोतो चाहिये कि आप इन्हें कुछ पारितोपिक देकर सन्तुष्ट करिये ताकि आगे के लिये ये लोग इस धन्धे को छोड़ कर उसके द्वारा अपना जीवन निर्वाह करने लगें। राजा ने ऐसा ही किया और इस असीम उपकार से भाण्ड लोग श्रीपाल जी के सदा के लिये ऋणी बन गये।

आस्तिक्य भाव

उपासक जानता है कि जो वैसा करता है वह ऐसा ही पाता है। जहर खाता है, सो मरता है और जो मिश्री खाता है उसका मुंह

कहो ! तुम्हारा विवाह किस नवयुवक के साथ में किया जावे ? लड़की ने कहा—हे भगवन् ! यह भी कोई सवाल है ? मैं इसके बारे में क्या कहूँ ? आप जैसा भी उचित समझें उसी की सेवा में मुझे तो अर्पण करदें मेरे लिये तो वही सिर का सेहरा होगा। इस पर चिढ़ कर राजा ने उसका विवाह श्रीपाल कोढिया के साथ में कर दिया। यह बात मन्त्री मुसाहिब आदि को बहुत बुरी लगी, अतः वे सब बोले कि प्रभो ! ऐसा न कीजिये। परन्तु मदनसुन्दरी बोली कि आप लोग इस आदर्श कार्य में व्यर्थ ही क्यों रोड़ा अटका रहे हैं। पिताजी तो बहुत ही अच्छा कर रहे हैं जो कि इन महाशय की सेवा करने का मुझे अवसर प्रदान कर रहे हैं। वस्तुतः शरीर तो आप लोगों का और मेरा भी सभी का ऐसा ही है जैसा कि इन महाशय का है। सिर्फ हम लोगों को लुभाने के लिए हमारे शरीरों पर चमड़ी लिपटी हुई है, किन्तु इनके शरीर की चमड़ी में छेद हो गये हुये हैं ताकि भीतर की चीज बाहर में दीखने लग रही है और कोई अन्तर नहीं है। अतएव इनकी सेवा करके मुझे मेरा जन्म सफल कर लेने दीजिये। भगवान जी आपका भला करेंगे।

करुणा का स्रोत

उपासक के उदार हृदय सरोवर में करुणा का निर्मल स्रोत निरन्तर बहता रहता है। वह अपने ऊपर आई हुई आपत्ति को तो आपत्ति ही नहीं समझता उसे तो हंस कर टाल देता है। परन्तु वह जब किसी दूसरे को आपत्ति से घिरा हुआ देखता है तो उसे सहन नहीं कर सकता है। वह उसकी आपत्ति को अपने ही ऊपर आई

लाजवाब दवा है। यह सुन कर राजा को विश्वास हुआ कि रात वाला राणी साहेब का कहना ठीक ही था।

मतलब यही कि अपनी अपनी जगह सभी मूल्यवान हैं। अतः समझदार आदमी फिर क्यों किसी के साथ में मात्सर्यभाव को लेकर उसका मूलोच्छेद करना चाहे ? क्योंकि न मालूम किसके बिना इसका कौनसा कार्य किस समय अटक रहे :

सम्वेगभाव

महात्मा लोगों ने निर्णय कर बताया है कि शरीरी भिन्न है तो शरीर उससे भिन्न। शरीरी चेतन और अमूर्तिक है तो शरीर जड और मूर्तिक प्रद्गल परमाणुओं का पिंड, जिसको कि यह चेतन अपनी कार्य कुशलता दिखलाने के लिए धारण किये हुए है। जैसे– बढई बसोला लिये हुये रहता है, काठ छीलने के लिये। सो भूंटा हो जाने पर उसे पाषाण पर घिस कर तीक्ष्ण बनाता है। और उसमें लगा हुआ बैंसा अगर जीर्ण-शीर्ण हो गया हो तो दूसरा बदल कर रखता है। वैसे ही उपासक भी अपने इस शरीर से भगवद्भजन और समाज सेवा सरीखे कार्य लिया करता है। अतः समय पर समुचित भोजन तथा वस्त्रों द्वारा इसे सम्पोषण भी देता है। परन्तु उसका यह शरीर भगवद्भजन सरीखे पुनीततम कार्य में सहायक न होकर प्रत्युत्त उसके विरुद्ध पड़ता हो इसे बेकार समझ कर उपासक भी इससे उदासीन होकर रहता है।

राजा पुष्पपाल की लड़की मदनसुन्दरी जो कि आर्यिका जी के पास पढ़ी थी। वह जब 'विवाह योग्य हुई तो पिता ने पूछा, बेटी

यदि न भी होतो वह हिंसक या हत्यारा हो रहता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि एक शस्त्र चिकित्सक है डाक्टर है और वह किसी घाव वाले रोगी को बहाल करने के लिए उसके घाव को चीरता है। घाव के चीरने में वह रोगी मर जाता है तो वहाँ डाक्टर हिंसक नहीं होता। परन्तु पारधी शिकार खेलने के विचार को लेकर जंगल में जाता है और वहां उसकी निगाह में कोई भी पशु पक्षी नहीं आता। लाचार होकर उसे योंहि अपने घर को वापिस लौटना पड़ता है। फिर भी वह हिंसक है, हत्यारा है, भले ही उसने किसी भी जीव को मारा नहीं है, फिर भी वह हिंसा से बचा हुआ नहीं है। क्योंकि प्राणियों को मारने के विचार को लिये हुये है। ऐसा हमारे महर्षियों का कहना है।

इसी को स्पष्ट समझने के लिये हमारे यहां एक कथा है कि स्वयंभूरमण समुद्र में एक राघवमच्छ है, जो बहुत बड़ा है। वह जितनी मछलियों को खाता है खा लेता है और पेट भर जानेके बाद भी मुंह में अनेकों मछलियाँ जाती हैं और वापिस निकलती रहती हैं उन मछलियों को जीवित निकली देख कर उस मच्छ की आंखों पर एक तन्दुल मच्छ होता है। वह सोचता है कि यह मच्छ बड़ा मूर्ख है जो इन मछलियों को जीवित ही छोड़ देता है। और यदि मैं इस जैसा होता तो सबको हड़प जाता। बस इसी दुर्भाव की वजह से वह मर कर घोर नरक में जा पड़ता है।

कोई भी अपने विचारों से ही भला या बुरा बनता है

"परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्य पापयोः प्राज्ञाः" ऐसा श्री पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में कहा गया हुआ है। यानि मनुष्य जैसे अच्छे या बुरे विचार करता है वैसा स्वयं बन रहता है, यह निःसंदेह बात है। विचार मनुष्य का सूक्ष्म जीवन है तो कार्यकरण उसका स्थूल रूप। मनुष्य का मन एक समुद्र सरीखा है, जिसमें कि विचार की तरंगें निरन्तर चलती रहती हैं। पूर्व क्षणमें कोई एक विचार होता है तो उत्तर क्षण में कोई और दूसरा। जैसे किसी को देखते ही विचारता है कि मैं इसे मार डालूं परन्तु उत्तर क्षण में विचार सकता है कि अरे मैं इसे क्यों मारूं इसने मेरा क्या बिगाड़ किया है। यह अपने रास्ते है तो मैं अपने रास्ते इत्यादि। हां जबकि यह बुरा है, काला है, देखने में भद्दा है मेरे सामने क्यों आया! यह मारा जाना चाहिये। ऐसी अनेक क्षण स्थायी एकसी विचारधारा बन रहती है। तब उसी के अनुसार बाह्य चेष्टा भी होने लगती है। आंखें लाल हो जाती हैं, शरीर काँपने लगता है। वचन से कहता है इसे मारो, पकड़ो, भागने न पावे एवं स्वयं उसे मारने में प्रवृत्त होता है तो आम लोग कहने लगते हैं कि यह हिंसक है, हत्यारा है, इस बेचारे रास्ते चलते को मारने लग रहा है।

हां, यदि कहीं वही चित्त कोमलता के सम्मुख हुआ तो उपर्युक्त विचारों के बदले में वहाँ इस प्रकार के विचार हो सकते हैं कि अहो देखो यह कैसा गरीब है, जिसके कि पास खानेको अन्न
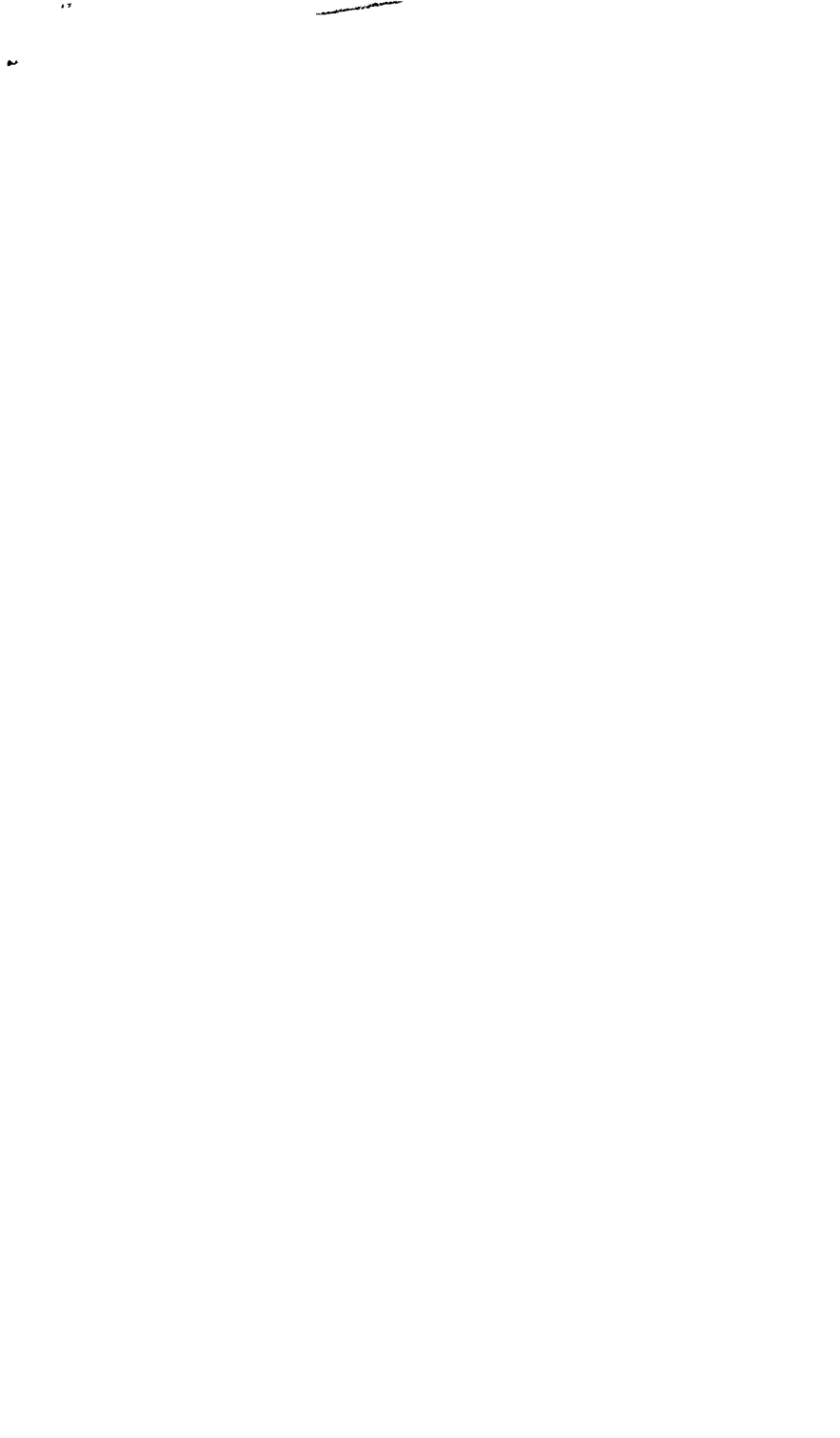
है, किन्तु जिसके विचार किसी को मारने के नहीं हैं और उसके समुचित आवश्यक कार्य करने में कोई जीव यदि मर भी जाता है तो वह हिंसक नहीं है।

अहिंसा की आवश्यकता

जैसे पापों में सबसे मुख्य हिंसा है वैसे ही धर्माचरणों में सबसे पहला नम्बर अहिंसा का है। जिस किसी को दिल में हिंसा से परहेज या अहिंसा भाव नहीं है तो समझ लेना चाहिये कि वहां सदाचार का नामोनिशान भी नहीं है। अहिंसा का सीधा सा अर्थ है किसी भी प्राणीका वध नहीं करना। जीना सबको प्रिय है, मरना कोई नहीं चाहता। अतः अहिंसा कम से कम अपने आपके लिये सबको अभीष्ट है। जो खुद अहिंसा को पसंद करे परन्तु औरों के लिये हिंसामय प्रयोग करे उसे प्रकृति मन्जूर नहीं करती, रुष्ट हो रहती है। जिससे कि विप्लव मचता है जैसा कि प्रायः आजकल देखने में आ रहा है। आज का अधिकांश मानव स्वार्थ के वश होकर दूसरों को बरबाद करने की ही सोचता रहता है। किसी ने तो टेलीफोन का उद्घाटन करके हलकारे की रोजी पर कुठाराघात किया है तो कोई खरादि के पुतलों द्वारा लिखा पढ़ी का काम लेना बता कर क्लर्क लोगों की आजीविका का मूलोच्छेद करने जा रहा है। किसी ने कुक्कुर चुल्ला खड़ा करके अपने आप खाना बनाना बता कर पूंजीवादियों की पीठ ठोकते हुए, विचारे खाना बनाने वाले रसोईदारों को बेकार बनाने पर कमर कस ली है। इसी प्रकार रोज एक से एक नई तजवीज खड़ी की जा रही है। जिनसे गरीबों

के धन्धे छिनते जा रहे हैं और धनवान लोग फैसनवाज, आराम-तलव एवं लापरवाह होते जा रहे हैं।

वन्धुओ! जरा आप ही सोच कर कहिये कि उपर्युक्त वातोंका और फिर फल ही क्या होता है? किसलिये ऐसा किया जाता है या होता है? क्या काम करने वाले लोगों की कमी है? किन्तु नहीं। क्योंकि किसी प्रकार के काम करने वाले की वावत आप आवश्यकता निकाल कर देखिये कि आपके पास एक नहीं वल्कि पचासों प्रार्थना-पत्र आ पहुंचेंगे कि आपके यहां अमुक कार्य करने मैं आ रहा हूं। सिर्फ आपकी आज्ञा आ जानी चाहिये इत्यादि। हां, यह जरूर कहा जा सकता है कि नये २ आविष्कारों को जन्म दिये विना आविष्कारों की तरक्की नहीं हो सकती, परन्तु वह विज्ञान भी किस काम का जो समाज को भूखों मारने का कारण वन कर घातक सिद्ध हो रहा हो। वह जंगली ज़ीवन भी अच्छा जहाँ कि कम से कम और भी कुछ नहीं तो फल फूल तो खाने को मिल जावें तथा वृक्षों के पत्ते तन ढांकने को मिल जावें। वह महलों का निवास किस काम का जहां पर चकाचोंध में डालने वाले अनेक प्रकार के दृश्य होकर भी भूखे के लिये पानी नदारत हो वल्कि अपना खाना लेजा कर भी खाया जाता हो तो महल मैला हो जाने के भय से छीन कर फैंक दिया जावे। मेरी समझ में आज का विज्ञान भी ऐसा ही है जो हमें अनेक प्रकार की आश्चर्यकारी चीजें तो अवश्य देता है, परन्तु इसने आम जनता की रोटियां छीन ली हैं और छीनता ही जा रहा है। कहीं राकेट वना कर उड़ाने में समय खोया जा रहा है तो कहीं अणुवम के परीक्षण में जनता के

...ध्याद किया जा रहा है। सुना है कि एक अणुवम को तैयार करने में सतरह अरब रुपया खर्च होता है। जिसका कि निर्माण जन-संहार के लिये होता है। द्वितीय महायुद्ध के समय अमेरिका ने जापान पर अणुवम का प्रयोग किया था। उसकी सताई हुई जनता आज तक भी नहीं पनप पाई है। अभी भी परीक्षण के हेतु एक वम समुद्र में डाला गया जिससे ऋतु परीत्य होकर कितनी बरवादी हो रही है यह पाठकों के क्ष में है।

मतलब यह है कि विज्ञान के साथ २ अगर अहिंसा की ना भी बढती रहे तब तो विज्ञान गुणकारी हो किन्तु आज तो ९ विद्वेपभाव अंकार आदि की वढवारी होती जा रही है अतः तरक्की पर होकर भी घातक होता जा रहा है।

हिंसा के दो पहलू और उसकी सार्थकता

...सी को नहीं मारना चाहिये या कष्ट नहीं देना यह अहिंसा पहलू है तो दूसरा पहलू है कि किसी भी कष्ट में पड़े हुये ण करने का यथाशक्य प्रयत्न करना ये दोनों ही वातें एक साथ होना चाहिये तभी वह अहिंसक वन सकता है। देखने में आता है कि आज की दुनियां के लोग कीड़ी-ड़ों को भी मारनेमें तो पाप समझते हैं सो तो ठीक ही है साथ में कैसा व्यवहार करना चाहिये। मेरे इस वर्ताव ता वन्धु निराकुल होने के वदले कहीं उलटा कष्ट से तो गा इस वातका विचार वहुत कम होता है। इसी से

हरेक देश, हरेक समाज, हरेक जाति और हरेक घर नरक जैसा बनता चला जारहा है। प्रायः हरेक आदमी का यही रवैया हो लिया है कि दूसरे आदमी काम खूब करें और खाना बहुतकम खावें बल्कि न खावें तो और भी अच्छा, किन्तु मुझे काम बहुत कम करना पड़े और खाने को मनचाहा खूब मिले। बस इसी हिंसामय दुर्विचार से इर्षा और द्वेष की आग दधक रही है जिसमें सारा ही विश्वझुलसा जारहा है। परस्पर प्रेम का भाव हम लोगों के दिल में से उठता जा रहा है। जो कि प्रेम अहिंसा का संजीवन माना गया हुआ है। जबकि किसी के प्रति हार्दिक प्रेम भावना होती है तो अपने आप यह विचार आने लगता है कि इसे कहीं परिश्रम न करना पड़े। मैं ही मेरे अथक परिश्रम से कार्य को सम्पन्न करलूं और उसका फल हम दोनोंमिल कर भोगें। इस प्रकार प्रेमरूप अमृत स्त्रोत से अहिंसा रूप बल्ली पल्लवित होती है।

एक सोचती थी कि मुझे काम कम करना पड़े और आराम विशेष मिले तो दूसरी सोचती थी कि मैं ही काम क्यों करूं ! इस तरह से कलह का साम्राज्य होगया था। इसी बीच में छोटी बहू माय के से आई जोकि एकशिक्षित घराने की लड़की थी। उसने बालकपन में अच्छी शिक्षा पाई थी भले संस्कारों में पली थी ! वह जब आई और घरका वातावरण दूषित देखा तो घबरा गई। वह क्या देखती है कि सास और जेठानियां बिना कुछ बात पर आपस में लड़ रही हैं। यह देखकर वह रोपड़ी और मन ही मन सोचने लगी कि हे भगवान क्या मेरे भाग्य में यही सिनेमा देखने को बदा है ? मैं यहां किस तरह से अपनी जिन्दगी बिता सकूगीं ? यों रोते २ वह थक गई और बेहोस सी होगई। आवाज आई कि उठ सावधान हो, लोहे को कन्चन बनाने के लिये पारस के समान तेरा समागम इस घर को सुधारने के लिये ही तो हुआ है।

अपनी भलाई ही है औरों के सुधारने के लिये

उसने सोचा यहां पर मुख्य लड़ाई काम करने की है। इन्हें इनके विचारानुसार काम करने में कष्टका अनुभव होता है। ये सब अपने को आलसी बनाये रखने में ही सुखी हुआ समझती हैं ! यदि घर के धन्धों को मैं मेरे हाथ से करने लगजाऊं तो अच्छा हो, मेरा शरीर भी चुस्त रहे और इन लोगों का आपस का झगड़ा भी मिट जाये, एकतीर्थ और दो काज वाली बात है। अब एक रोज जबकि सब जन्नियां भोजनपानके अनन्तर आकर एक जगह बैठी तो सुशिक्षिता ने कहा कि सासू जी और जीजीबाइयो सुनो मेरे रहते हुये आप

लोग काम करो यह मेरे लिये शोभा की बात नहीं, अपितु मैं इसमें अपनी हानि और अपमान ही समझती हूँ। यहाँ कोई विशेष काम भी नहीं है और मेरा अभ्यास कुछ ऐसा ही है कि काम करने में ही मुझे आनन्द मालूम होता है। अतः कल से घर का रसोई पानी का काम मैं ही कर लिया करूं, ऐसी आज्ञा चाहती हूं। इस पर बड़ी जेठानी बोली कि कंवराणीजी! अभी तो आपके खाने पीने और विनोद कर बिताने के दिन हैं, फिर तो तुम्हें ही सब कुछ करना पड़ेगा ताकि करते करते थक भी जाओगी। सुशिक्षिता नम्रता के साथ कहने लगी कि जीजी मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ मुझे निराश मत करो, मेरे तो यही काम करने के दिन हैं। अभी से करने लगूंगी तो कुछ दिनों में आप लोगों का शुभाशीर्वाद से आगे को काम करने लायक रहूंगी। अन्यथा तो मैं आलसी बन रहूंगी, ताकि फिर भविष्य में कुछ भी न कर सकूंगी। यथाशक्ति घर का काम करना मेरा कर्तव्य है। अतः दया कीजिये और मुझसे काम लीजिये। हाँ, यह अवश्य हो कि मैं कहीं भूल रहूं तो बताते तथा होशियार अवश्य करते रहिये।

अब वह रोज सवेरे उठती और नहा धोकर भगवद्भजन करके भोजन बनाने में लग रहती थी। अनेक तरह का सरस, स्वादिष्ट भोजन थोड़ी सी देर में तैयार कर लेती और सबको भोजन करवा कर बाद में आप भोजन किया करती थी। यदि कभी कोई पाहुणा आ गया और असमय में भी भोजन बनाना पड़ा तो बड़े उत्साह के साथ वही भोजन बनाया करती थी।

यह देख कर सास ने एक दिन आश्चर्य पूर्वक पूछा कि वहू!

तू ऐसा क्यों करती है ? सब काम तू अकेली ही क्यों किया करती हैं ? तब सुशिक्षिता बोली कि सासू जी ! आप यह क्या कह रही हैं ? काम करने से कोई दुबला थोड़े ही हो जाता है। होता काम करने से तो प्रत्युत्त शरीर स्वस्थ रहता है। यह तो मेरे घर का कार्य है मुझे करना ही चाहिये। कोई भी अपना काम करे इसमें तो बड़ाई ही क्या है ? मनुष्यता तो इसमें है कि अपने घर का काम सावधानता से निबटा कर फिर पड़ोसी के भी काम में हाथ बटाया जावे। यह शरीर तो एक रोज मिट्टी में मिल जावेगा। हो सके तो जहाँ तक इसको दूसरों की सेवा में लगा देना ही ठीक है।

सुशिक्षिता की जेठानियां भी यह सब बात सुन रही थी अतः वे सब सोचने लगी कि देखो हम लोग कितनी भूल रही हैं। पड़ोसिन के कार्य में हाथ बटाना तो दूर किनार रहा हम लोग तो अपने घर के कार्यों को भी इसी के ऊपर छोड़ कर बेखबर हो रही हैं जैसा ही इस घर में होने वाला कार्य इसका इससे पहिले हमारा भी तो है फिर हम लोगों को क्यों न करना चाहिये, क्यों जी चुराना चाहिये ? बस अब सभी अपना २ कार्य स्वयं करने लगी।

कोई किसी से जैसा कराना चाहे वैसा खुद करे

सुशिक्षिता ने देखा कि अब मेरे जुम्मे कोई खास काम नहीं रहा है तो एक दिन वह चक्की तो घर में थी ही कुछ गेहूं लेकर पीसने बैठ गई। उसे ऐसा करते देख कर सासू आई और बोली कि बहू आज यह क्या कर रही है ? क्या पनचक्की दुनियां से उठ गई ? ताकि तू गेहूँ लेकर पीसने को बैठी है ? इस पर सुक्षिशिता

वोली कि सासू जी आप या जेठानियां और तो कुछ करने नहीं देती, खुद करने लग गई हैं तो फिर मैं क्या करूं ? काम न करने से शरीर आलसी वन जाता है। दिन भर निठल्ला वैठे रहने से मनमें अनेक प्रकार के खोटे विचार आते हैं। पीसने से कसरत भी कुछ सहज ही वन जाती है ताकि शरीर और मन दोनों प्रसन्न हो रहते हैं। इसके अलावा पनचक्की का आटा खाने से धार्मिक और आर्थिक हानि के साथ साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी विगड़ता है इस लिये मैंने ऐसा करना ठीक समझा है।

सुशिक्षिता को ऐसा करती हुई सुन कर उसकी जेठानियों को तमासा सा लगा अतः एक एक करके वे सव भी उसके पास में आ खड़ी हुई और देखने लगी। एक ने देखा कि यह तो वड़ी ही आसानी से चक्की को घुमा रही है एवं एक प्रकार का आनन्द का अनुभव कर रही है जरा मैं भी इसे घुमा कर क्यों न देखूं ? ऐसे मन से उसके साथमें आटा पीसनेको वैठी और थोड़ी देर वाद वोली कि ओह, यह तो वहुत अच्छी वात है। यद्यपि थोड़ा परिश्रम तो इसमें होता है। सो तो हिंडोले पर हींडने में भी होता है, जो कि मनोविनोद के लिये किया जाया करता है। इसमें तो विनोद का विनोद और काम का काम तथा शरीर विल्कुल फूल जैसा ही हलका वन जाता है। मैं भी रोजमर्रा थोड़ा वहुत पीसा करूंगी। फिर क्या था, फिर तो क्रम क्रम से सभी पीसने लगी।

सुशिक्षिताने फिर फुरसत पाई कि हाथ में वुहारी लेकर घर का कूड़ा कचरा साफ किया और फिर घड़ा लेकर कूंवे पर पानी भरने को जाने लगी तो सासू ने प्रेम से कहा वेटी यह क्या करती

है ? घर पर तो नौकर बहुत हैं, उनसे काम कराओ ! जवाब में सुशिक्षिता ने कहा माता जी ? कोई व्यक्ति आप बैठा रहकर नौकरों से काम ले, मैं इसे अच्छा नहीं समझती क्योंकि क्या उसके खुद के हाथ पैर नहीं हैं ? अगर हैं तो ऐसा क्यों होना चाहिये ऐसा करना तो मेरी समझ में उन नौकरों के साथ में दुर्व्यहार करना है ! नौकर भी तो समझदार के लिये उसके भाई-बन्धु स्थानीय ही होते हैं । उन्हें तो इसलिये रक्खा जाता है कि समय पर मनुष्य से खुद से काम पूरा न किया जा सकता हो या जिस २ कामको वह नहीं कर जानता हो वह काम प्रेम-पूर्वक उनसे लेता रहे । कार्य करने से मनुष्य की प्रतिष्ठा कम नहीं होती प्रत्युत बढ़ती है। प्रतिष्ठा के कम होने का तो कारण है तो स्वार्थ-परायणता या विलासिता है । सुशिक्षिता की ऐसी ज्ञान भरी बात सुनकर सेठानी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मन में सोचने लगी कि अहो देखो इसके कितने ऊंचे विचार हैं। यह साक्षात भलाई की मूर्ति ही प्रतीत होती है जिसकी कि वजह से आज मेरे इस घर में शान्ति का साम्राज्य होगया हुआ है जहां पर कि इससे पूर्व में कलह का आतङ्क छाया हुआ था। अब एक रोज सेठानी बाजार से मंगवा कर सब बहूवों को उनके साल भरके खर्चके योग्य छः २ जोड़ा साड़ियों के दिये तो। सुशिक्षिता ने अपने उन जोड़ों में से एक जोड़ा लेकर, हे जीजी मेरे पास पहले ही से बहुत सी साड़ियां मेरी पेटी में धरी रक्खी हैं काम में नहीं आती तो मैं अब इनका क्या करूंगी ? अतः यह एक साड़ी जोड़ा आप ही ग्रहण करें, ऐसा कहते हुए बड़ी जेठानी को भेंट किया एवं एक एक जोड़ा और जेठानियों को दिया तथा ननद

को भी एक जोड़ा दे दिया जिससे वे सब बड़ी प्रसन्न हुई।

इधर सेठानी को यह बात मालूम हुई और इसने पूछा कि बहू यह क्या किया ? तो सुशिक्षिता बोली कि सासूजी आपही देखती हैं कि मैं तो मेरे हाथ के कते हुए सूतसे खुद ही बुनकर तैयार कर लेती हूं उस साड़ी को पहनती हूँ जो कि साल भर में दो साड़ियां ही मेरे लिये पर्याप्त होती हैं किन्तु मैं साल भर में छः सात साड़ियां तैयार कर लेती हूं। जो कि मेरे पास सन्दूक में भरी रक्खी है। मैं तो उनमें से भी इनको देना चाहती हूं, परन्तु ये जीजी बाइयाँ भले घरानों की हैं। इन्हें ऐसी मोटी साड़ियां पसन्द नहीं आती। आज आपने ये बेशकीमती साड़ियां मंगवाकर हम सबको पारितोषिक रूप में दी तो आपका हाथ पाछा गिराना तो मैंने उचित नहीं समझा। किन्तु मैं व्यर्थ ही इनका संग्रह करके क्या करती ? अतः एक एक जोड़ा इनको मैंने दे दिया। अब यह एक जोड़ा और शेप है इसको भी अगर आप अपने लिये रखलें तो बहुत अच्छा हो। आपके काम में आ जावेगा, वरना मेरे पास तो व्यर्थ ही पड़ा रहेगा। मैं तो मेरी हाथ की बुनी हुई साड़ियोंमें से भी कभी किसी नोकरानी को तो कभी किसी गरीब बहिन को दे दिया करती हूं। संग्रहवृत्तियां फैसनबाजी को मैं मेरे लिये अच्छा नहीं समझती। वस्त्रादि चीजों को संग्रह कर रखने में मन उन्हीं वस्तुओं में चिपका रहता है। मोह उत्पन्न होता है। जो बहिनें नित्य नई पोसाकें बदलना जानती हैं वे सब अपने पतीदेवों को व्यर्थ की परेशानी में डालने का काम करती हैं। क्योंकि अन्याय अनर्थ का न होता कार्य करके भी धन कमा लाकर उनकी हवस पूरी करने की ही चिन्ता

रहती है। जो कि एक बड़ी भारी हिंसा जिसका उत्तरदायित्व उन मेरी फैशनवाज बहनों के जुम्मे होता है, जिन्हें कि शोभा का प्रलोभन होता है। परन्तु उन्हें सोचना चाहिये कि शोभा तो गहनों और कपड़ों से न होकर समुचित निःस्वार्थ सेवा और परोपकार आदि सद्गुणों द्वारा होगी। इस प्रकार सुन कर सेठानी ने कहा कि वहू तेरा कहना वहुत ठीक है। आज से मैं तो यह प्रतिज्ञा करती हूं कि तेरे हाथ के बने हुए कपड़ों को ही पहिना करूंगी। एवं सादगी से अपना जीवन विताऊंगी।

अहिंसा अव्यवहार्य नहीं है

किसी को भी मारना हिंसा है, न कि मरना। क्योंकि मरना तो कभी न कभी शरीरधारी को पड़ता ही है। हां अपने आप जान वूझ कर, पर्वत से पड़ कर, कूप में पड़ कर, तलवार खाकर या विष भक्षण कर मरना वह मरना नहीं है, किन्तु अपने आपको मारना है। जैसे दूसरेको मारना हिंसा है वैसे ही अपने आपको मारना भी हिंसा ही नहीं वल्कि घोर हिंसा है। जिसको आत्मघात वता कर महर्षियों ने उसकी घोर निन्दा की है। और जवकि मारने का नाम हिंसा है तो फिर हिंसा किये विना निर्वाह नहीं हो सकता, यह विश्वास झूठा है। क्या किसी को मारे विना किसी का काम नहीं वन सकता? नहीं, ऐसी वात नहीं है। हां कोई वहुत या थोड़ी हिंसा करता है तो कोई हिंसा किये विना भी रह सकता है। वल्कि अहिंसा के विना किसी का भी गुजर नहीं हो सकता। एक वड़े से वड़ा पारधी जिसने प्राणियों को मारना ही अपना काम

समझ रखा है वह भी कम से कम, अपनी उसकी पक्ष करने वाले को तो नहीं मारता है। अतः यह तो मानना ही होगा कि अहिंसा सब कोई की उपास्य देवता है।

हां यह कहा जा सकता है कि अपने शरीर का निर्वाह अपने आप करने वाला आदमी भले ही माँस न खावे और खून या शराब पीये बिना रह जावे परन्तु शाक सब्जी तो उसे खाना ही होगा और प्यास बुझाने के लिये स्वच्छ पानी भी पीना ही होगा। बस इसी लिये हमारे दीव्य ज्ञानी महर्षियों ने बतलाया है कि कौटाम्बिक जीवन वाले लोगों को स्थावर हिंसा करना आवश्यक है, उनके बिना उनका निर्वाह नहीं हो सकता किन्तु त्रसअहिंसा तो उनको भी कभी नहीं करना चाहिये।

अहिंसा में अपवाद

ऊपर में बताया गया हुआ है कि त्रसों की हिंसा कभी नहीं करना चाहिये। फिर भी साधक के सम्मुख ऐसी विषम परिस्थिति कभी कभी आ उपस्थित होती है कि वह उसे हिंसा करने के लिये बाध्य करती है। मान लीजिये कि आप यात्रा को जा रहे हैं। एक कुलीन बहिन भी आपके भरोसे पर आपके साथ चल रही है। रास्ते में कोई लुटेरा आकर उस पर बलात्कार करना चाहता है। क्या आप उसे ऐसा करने देंगे? कभी नहीं। जहां तक हो सकेगा उसका हाथ भी उस बहन के नहीं लगने देने के लिए आप डट कर उस डाकू का मुकाबला करेंगे और उसे मार लगावेंगे।

एक जच्चा है जिसके बच्चा होने वाला है। बहुत देर हो गई वह

वह परेशान हो रही है। बच्चा और किसी भी उपाय से बाहर नहीं आता है। तो फिर डाक्टर उस बच्चे को खण्ड खण्ड करके बाहर निकालता है। क्या करे लाचार है। बच्चे को मार कर भी जच्चा को बचाता है।

अपने जीवन में ऐसे और भी अनेकानेक प्रसङ्ग आ उपस्थित होते हैं जहां पर गृहस्थ को अपने अभिष्ट को बचाये रखने के लिये तद्विरोधी अनिष्ट का परिहार करना ही पड़ता है। इस पर आज हमें ऐतिहासिक घटना का स्मरण हो आता है। विश्वशान्ति के अग्रदूत श्री वर्द्धमान स्वामी नाम की पुस्तक जो कि श्री दिगम्बर दास जैन मुखत्यार सहारनपुर की लिखी हुई है। उसके तीसरे भाग में पृष्ठ ४२६ में लेखक लिखता है—

जैन वीरों की देशभक्ति

मुसलमानों ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया। वहां के सेनापति आभूव्रती श्रावक थे। जोकि नित्य नियम-पूर्वक प्रतिक्रमण किया करते थे। शत्रुओं से लड़ते २ उनके प्रतिक्रमण का समय हो गया जिसके लिये उन्होंने एकान्त स्थान पर जाना चाहा। परन्तु मुसलमानों की जबरदस्त सेना के सामने अपनी मुट्ठी भर फौज के पांव उखड़ते देख कर राष्ट्रीय सेवा के कारण रणभूमि को छोड़ना उचित न जाना और दोनों हाथों में तलवार लिए होदे पर बैठे हुये बोलने लगे-जेमे जीवा विराहिया एगिन्दिया वावे इन्दिया वा इत्यादि जिसको सुन कर सेना के सरदार चौंक उठे कि देखो ये रणभूमि में भी जहां कि तलवारों की खनाखनी और मारो २ के

भयानक शब्दों के सिवाय कुछ सुनाई नहीं देता। वहां एकेन्द्रीय दो इन्द्रिय जीवों तक से क्षमा चाह रहे हैं। ये नरम नरम हलवा खाने वाले जैनी क्या वीरता दिखा सकते हैं। प्रतिक्रमण का समय समाप्त होने पर सेनापति ने शत्रुओं के सरदारको ललकारा कि ओ! इधर आ; हाथ में तलवार ले, खांडा संभाल। वीरता अपनी दिखा, होशकर मनकी निकाल। धर्म का पालन किया होतो धर्मकीशक्ति दिखा, वरना जान बचाकर फौरन यहां से भाग जा। इस पर शत्रुओं का सरदार उत्तर भी देने न पाया था कि जैन सेनापति आवू ने इस वीरता और योग्यतासे हमला किया कि शत्रुओं के छक्के छूटगये और मुसलमान सेनापति को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। फिर क्या था? गुजरात का बच्चा २ आवू की वीरता के गीत गाने लगा। उसको अभिनन्दन पत्र देते हुये रानी ने हंसी में कहा कि सेनापति! जब युद्धमें एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय जीवों तक से क्षमा मांगरहे थे तो हमारी फौंज घबरा उठी थी कि एकेन्द्रिय जीवसे क्षमा मांगने वाला पंचेन्द्रिय मनुष्य को युद्ध में कैसे मार सकेगा इस पर व्रतीश्रावक आवू ने उत्तर दिया कि महाराणी जी? मेरे अहिंसा व्रतका सम्बन्ध मेरी आत्मा के साथ है। एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय जीवों तक को वाधा न पहुँचाने का जो नियम मैंने ले रक्खा है वह मेरे व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा से है। देश की सेवा अथवा राज्य की आज्ञा के लिये यदि मुझे युद्ध अथवा हिंसा करना पड़े तो ऐसा करने में मैं मेरा धर्म समझता हूँ क्योंकि मेरा यह शरीर राष्ट्रीय सम्पत्ति है। इसका उपयोग राष्ट्र की आज्ञा और आवश्यकता के अनुसार ही होना उचित है परन्तु आत्मा और मन मेरीनिजी सम्पत्ति है। इन दोनों को हिंसा भावसे अलग रखना मेरे अहिंसा व्रतका

लक्षण है। ठीक ही है ऐसा किये विना गृहस्थों का निर्वाह नहीं हो सकता। गृहस्थ ही क्या कभी २ तो साधु महात्माओं तक को भी ऐसा करने के लिये वाध्य होना पड़ा है।

पद्मपुराण में एक जगह वर्णन आता है कि रावण पुष्पक विमान में बैठ कर आकाश मार्ग से कहीं जा रहा था। तो रास्ते में कैलाशपर्वत पर आकर उसका विमान रुक गया। मेरे विमानको किसनेरोक लिया। इस विचार से वह इधर उधर देखने लगा तो नीचे पर्वत पर वाली मुनि को तपस्या करते हुए पाया और विचार किया कि इन्हीं ने मेरे विमान को रोका है। अतः रोष में आकर सोचने लगा कि मैं मेरे इस अपमान का इनसे वदला लूंगा, पर्वत सहित इनको उठाकर समुद्र में डाल दूंगा। और जव वह अपने इस विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिए पहाड़ के मूल भाग में पहुँच गया तो महर्षि ने सोचा कि कहीं यदि यह सफल हो गया तो वड़ा अनर्थ हो जावेगा। भरत चक्रवर्ती के वनाये हुये वहुमूल्य और ऐतिहासिक जिनायतन भी नष्ट हो जावेंगे तथा पर्वत में निवास करने वाले पशु पक्षी भी मारे जावेंगे। एवं उन्होंने अपने पैर के अंगूठे से जरा दवा दिया तव रावण दव कर रोने लगा। तव मन्दोदरी ने आकर महर्षि से अपने पति की भिक्षा माँगी तो महर्षिने पैर को ढीला किया।

जैन कौन होता है ?

पक्षपातं जयतीति जिनः। यानि जो कोई भी महाशय यह तेरा है और यह मेरा, यह अच्छा है और यह वुरा। इस प्रकार के

विछिन्न भाव को अपने मन में से निकाल बाहर कर देता है एवं जो सदा सब तरफ सबको साथ एकसी माध्यमीक व्यापक दृष्टि से देखने लगता है वह जैन कहलाता है। यह दुनियांदारी का पामर प्राणी अनायास ही अपने शरीर और इन्द्रियों के सम्पोषण रूप स्वार्थ में संलग्न पाया जाताहै जो कि शरीर नश्वर है तथापि आत्मा अविनश्वर, किन्तु इसकी विचार धारा इस ओर नहीं जाती। यह तो अपनी मोटी बुद्धी से इस चलते फिरते शरीर को ही आत्मा समझे हुये है, अतः इसे बिगड़ने न देकर चिरस्थाई बनाई रखने की सोचता है, एवं इसके इस काम में जो सहायता देने वाले हैं उन्हें अपने और अच्छे मान कर अपनाता है। किन्तु इससे विरुद्ध को पराये और बुरे समझकर उन्हे बरबाद करने में तत्पर है एवं संघर्ष का जन्मदाता बना हुआ है शान्ति से दूर है।

हां, मनुष्य अगर अपनी प्रज्ञा से काम ले तो इसकी समझ में आ सकता है कि शरीर और आत्मा भिन्न २ चीजें हैं, शरीर जड़ और नाशवान है तो मेरी आत्मा चैतन्य की धारक शाश्वत रहने वाली। एवं जैसी मेरी आत्मा है वैसी ही इन इतर शरीरधारियों की भी आत्मायें हैं, ऐसे विचार को लेकर फिर वह जिसमें किसी भी प्राणी को कष्ट हो ऐसी चेष्टा न करके ऐसी प्रक्रिया करता है जिस में कि प्राणीमात्र का हित सन्निहित है। यानि जो स्वार्थ से दूर रह कर पूर्णतया परमार्थ की सड़क पर आजाता है वही जिन कहलाता है, एवं इस प्रकार जिन बनने का हरेक मनुष्य को अधिकार है यदि वह उपर्युक्त रूप से आत्म साधना को स्वीकार करले। बस ऐसा जिसका विश्वास हो वह जैन होता है जोकि अहिंसा में रुचि रखने

वाला होता है, हिंसा से परहेज करता है।

अहिंसक के लिए विरोध का क्षेत्र

जो अहिंसक होता है वह स्वंय तो वीर बहादुर होता है। उसे किसी से भी किसी प्रकार का डर नहीं होता। परन्तु उसने जिन बुजदिलों या बालवृद्ध आदि लोगों की सम्भाल रखने का संकल्प ले रक्खा है, उन लोगों पर यदि कोई मनचला आदमी अनुचित आक्रमण करके गड़बड़ी मचाना चाहता है तो उसे सहन कर लेना उसके आत्मत्व से बाहर की बात हो जाती है। अतः वह उसे उस गड़बड़ी करने से रोकता है, कहता सुनता है। यदि कहने सुनने से मान जावे जब तो ठीक ही है और नहीं तो फिर बल प्रयोग द्वारा भी उसका उसे प्रतिवाद करना पड़ता है। इसीका नाम विरोध है। जो कि एक अहिंसक का कर्तव्य माना गया है। क्योंकि ऐसा न करने से अपने आश्रितों की रक्षा करने का और दूसरा कोई चारा नहीं होता।

इस विरोध करने में आक्रमणकारी का कुछ न कुछ विगाड़ अवश्य होता है जिसको कि लेकर विरोधक को हिंसक ठहराया जाया करता है। परन्तु वहाँ पर जितना भी बिगाड़ होता है उसका उत्तरदायित्व तो वह आक्रमक ही है। विरोधक तो अपने उन लोगों की रक्षा करने का प्रयत्न करता है, जिनकी रक्षा करने का उसने प्रण ले रक्खा है एवं समर्थ है।

राम और रावण

ये दोनों ही यद्यपि महाकुलोत्पन्न थे। महाशक्तिशाली थे। अनेक प्रकार के हथियारों को धारण करने वाले थे। फिर भी दोनों के कर्तव्य

कार्यमें बड़ा भारी अन्तर था। राम की शक्ति और उनके हथियारों का प्रयोग सदा परमार्थ परोपकार के लिए हुआ करता था। किन्तु रावण की सारी चेष्टायें स्वार्थ भरी थी क्योंकि राम समुचिताह्यव-साथी दृढ़मना महापुरुष थे। किन्तु रावण दुरभिलापी था मन चलेपन को लिये हुये था। श्री रामचन्द्र जी की शक्ति और हथियारों का प्रयोग सदा विश्वकल्याण के लिये हुआ करता था। किन्तु रावण की सभी क्रियायें औरों की तो बात ही क्या अपने कुटुम्ब के लोगों के भी विरुद्ध उनको कष्ट देने वाली होकर सिर्फ उसकी स्वार्थान्धता को ही पनपाने वाली थी, इसमें अगर कोई कारण था तो एक उसका मनचलापन ही था।

कुलक्रम निश्चित नहीं है

कश्यपु के प्रल्हाद हो, अग्रसेन के कंश।
फिर कोई कैसा कहे, किसका कैसा वंश॥

चिरन्तन काल से चली आई हुई इस मनुष्य परम्परा में कोई आदमी सरल स्वभाव का होता है, किन्तु उसका लड़का बिल्कुल वक्र स्वभाव वाला दीख पड़ता है। और अज्ञानी बाप का लड़का अतिशयातीक्ष्ण बुद्धि वाला पाया जाता है। हिरण्यकश्यपु एकान्त है एवं समर्थ है

नास्तिक विचार वाला था किंतु उसीका लड़का प्रल्हाद परम आस्तिक था। एवं महाराज उग्रसेन जोकि परम क्षत्रिय थे, प्रजा वत्सल थे उनका लड़का कंस उनके बिल्कुल विपरीत उग्र स्वभाव का धारक प्रजा को निष्कारण ही कष्ट देने वाला हुआ। ऐसी हालत में कौन आदमी कैसे मां बाप का लड़का है इसका निर्णय कैसे कियाजा

सकता है। यद्यपि मूंगों से मूंग ही पैदा होते हैं, फिर भी उन्हीं में कोई २ घोरड़ू भी पैदा होता है जोकि न तो सिझता है और न भीझता है। जिस खदान में पत्थर निकलते हैं उसी में कहीं कभी हीरा भी निकल आता है। यही कुलक्रम का हाल है।

एक भील का अटल संकल्प

महाभारत में एक जगह आया है कि-बाण विद्या की कुशलता के बारे में द्रोणाचार्य की प्रसिद्धि सुन कर एक भील उनके पास आया और बोला कि प्रभो मुझे बाण विद्या सिखा देवें। द्रोणाचार्य ने जवाब दिया कि मैं अपनी विद्या क्षत्रिय को ही सिखाया करता हूं यह मेरा प्रण है अतः मैं तुझे सिखाने के लिए लाचार हूँ इस पर भील ने कहा प्रभो ! मेरा भी यह दृढ़ संकल्प है कि मैं आपसे ही विद्या सीखूंगा ऐसा बोलकर चला गया और द्रोणाचार्य की मूर्ति बना कर उसके आगे बाण चलाना सिखने लगा। कुछ दिन में वह अर्जुन से भी अधिक प्रवीण होगया। एवं उसकी फलती हुए बाण विद्या की कीर्ति को सुना तो घूमते फिरते हुए द्रोणाचार्य एक रोज उसके पास आये और बोले कि भाई ? तुमने यह विद्या किस से सीखी। उत्तर में यह कहते हुए कि प्रभो ! मैंने आपसे ही सिखी है। यह देखिये आपकी मूर्ति बनाकर रख छोड़ी है। द्रोणाचार्य के चरणों में गिर गया। द्रोणाचार्य बोले यदि ऐसा है तो इसकी दक्षिणा मुझे मिलनी चाहिए। जवाब मिला आप जो चाहें सो ही लीजिये द्रोणाचार्य बोले और कुछ नहीं सीर्फ अपने हाथ का अंगूठा दे दो ! भील ने झट अंगूठा काटकर दे दिया। द्रोणाचार्य हंसे और बोले कि भील अब

तुम बाण कैसे चलावोगे ? गुरू कृपा चाहिए, ऐसा कहते हुए भीलने पैर के अंगूठे से बाण चला दिया। द्रोणाचार्य ने उसकी पीठ ठोकते हुए कहा कि शाबाश बेटे ? किन्तु किसी भी प्राणी कि हिंसा करने में इस विद्या का दुरुपयोग मत करना। जवाब मीला कि प्रभो ! हिंसा करना तो कमीना पना है मैं कमीना नहीं हूं इस पर, द्रोणाचार्य हंसे। उनके हंसने का मतलब भील समझ गया। अतः वह बोला कि प्रभो यद्यपि मैं एक बनचर का लड़का हूँ किन्तु में समझता हूं कि जन्म से कोई नीच और उच्च नहीं होता। जन्म तो सबका एक ही मार्ग से होता है। नीचता और उच्चता तो मनुष्यों के विचारों या कर्तव्यों पर निर्भर है। जो आदमी एकान्त स्वार्थपरता को अपना कर चोरी, चुगल खोरी जैसे दुष्कर्मों में फंसा रहता है वह मनुष्यता से दूर होने के कारण नीच बना रहता है। परन्तु जो मनुष्यता में समझता है वह इन दुर्गुणों से बिलकुल दूर रहकर परोपकार, सेवाभाव आदि सद्गुणों को अपनाता है। एवं उच्च बनता है। मैं भी अपने आप को मनुष्य मानता हूं फिर आप ही कहें कि मैं मनुष्यता को कैसे भूल सकता हूँ।

शस्त्र सन्धारण करते को भी आज हिंसा का कारण मानकर हेय समझा जाने लगा है। जो कि पूर्व जमाने में क्षत्रियता का भूषण होता हुआ चला आया है। पाषाण काल के अन्त में जब लोगों के लिए कृषि सम्पादन की आवश्यकता हुई तब दिव्य ज्ञानी भगवान ऋषभदेव ने उस की सुव्यवस्था के लिए मनुष्य मात्र को तीन भागों में विभक्त किया।

क्षत्रिय, २ वैश्य, ३ शुद्र । उनमें से वैश्यों के जुम्मे खेती करने का और उसमें उत्पन्न हुई चीजों को यहां पहुंचाने का काम सौंपा गया। शुद्रों को उन्होंने मनुष्यों के काम में आने योग्य बनाने का काम सोंपा गया और क्षत्रिय को उन सबकी रक्षा के लिए नियुक्त किया गया था। तब उन सबको उनके योग्य हथियार बनाकर दिये गये थे ताकि वे लोग आसानी से अपने २ कार्य को सुसम्पन्न कर सकें। जैसा किसान के लिए हल मूसल वगैरह। लौहार के लिए हथोड़ा घन वगैरह। खाती को वसोला, करोत वैगरह। हलवाई को भर कोंचा कडाही वगैरह। वैसे ही क्षत्रिय के लिए तलवार बन्दूक वैगरह दिये गये थे। जिनके द्वारा क्षत्रिय वर्ग अपने प्रजा संरक्षण रूप कार्य में कुशलता पूर्वक उत्तीर्ण हो रहे हैं। एवं वास्तव में वह हिंसा का नहीं बल्कि अहिंसा का पोषक ही ठहरता है यह बात दूसरी कि वह अगर किसी सांसी बाँवरिया आदि हिंसक व्यक्ति के हाथ में आ जावेगा तो अवश्य ही हिंसा में प्रयुक्त होगा। परन्तु वह उस हथियार का दोष नहीं वह तो उस व्यक्ति के मनचलेपन का फल है। हाँ, आज की जनता का अधिकांश यह हाल है कि वह क्षत्रियता से दूर होकर स्वार्थपरायणता की ओर ही बड़ी तेजी से दोड़ी चली जा रही है। इसलिए शस्त्र वृत्ती भी अनुपयोगी ही नहीं प्रत्युत घातक बनती जा रही है। जब कोई किसी भी शस्त्रधारी को देखता है तो भय के मारे थर २ काँप उठता है क्योंकि उसके मन में यह शस्त्रधर घर है। सबल है : अतः मेरी रक्षा करोगे ! ऐसा विचार न आकर इसके स्थान पर यही भाव उत्पन्न होता है। कि यह कहीं मुझे मार न डाले। क्यों कि आज जहां तहां बलीयानबलं ग्रसते बली

कहावत के अनुसार-जो भी बलवान है वह अपने उस बल का दुरुपयोग दुर्बलों को हड़पने में करता हुआ देखा जाता है। इसलिए हमारी सरकार को भी यह नियम बनाना पड़ा है कि जो कोई भी शस्त्र रखना चाहे वह शस्त्र धारण करने से पहले इस बात को प्रमाणित करदे कि मैं उस शस्त्र के द्वारा संरक्षण का ही काम लूंगा, संहार करने का नहीं। एवं भले ही हमारी सरकार ने सर्वसाधारण को चुनौती दी है फिर भी मनचले आदमी समय पर अपनी काली करतूतों से बाज नहीं आते हैं।

अहिंसा की निरुक्ति

हिंसा के नाम का अभाव अहिंसा है। हनन हिंसा इस प्रकार हन धातुसे हिंसा सम्बन्ध निष्पन्न हुआ है जोकि हन धातु सकर्मक है। यानी किसी को भी मार देना, कष्ट पहुंचाना, सताना हिंसा है। परन्तु किसी भी अबोध बालक का पिता गल्ती करते हुए अपने उस बच्चे की उस गल्ती को सुधारने के लिए उसे डराता, धमकाता है और फिर भी नहीं मानने पर उसे मारता, पीटता है। अब शब्दार्थ के ऊपर ध्यान देने से पिता का यह काम हिंसा में आ जाता है। एवं यह हिंसक बनकर पापी ठहरता है। जो कि किसी भी प्रकार किसी को भी अभिष्ट नहीं है। अतः उस दुर्गण से बचने के लिए हमारे महापुरुषों ने इसमें एक विशेषता स्वीकार की है। वह यह की किसी को भी बरबाद कर देने की दृष्टि से उसे कष्ट दिया जावे तो वह हिंसा है। जैसा की उमास्वामी महाराज के प्रमत्त योगात्प्राणं व्यपरों पण हिंसा इस सूत्र से सपष्ट है। मतलब यह है कि

जो कि उसके पालन पोषण का पूर्ण अधिकारी है। बालक के जीवन को निराकुल बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील हुआ करता है। तो बालक जबकि अपने भोलेपन के कारण उसके जीवन को समुन्नत बनाने वाली भलाई की ओर बढ़कर प्रत्युत बुराइयों में फसने लगता है तब ऐसा करने से रोकने के लिए उसे डाट बताना पिता का कर्तव्य हो जाता है। इस प्रकार अपने कर्तव्य का निर्वाह करता हुआ पिता पुत्र का मारक नहीं किन्तु संजीवन सरक्षक होकर उसके द्वारा सदा के लिए समादरणीय होता है।

राजनीति और धर्मनीति

इन दोनों में परस्पर विरोध है। क्योंकि धर्म तो अहिंसा का पालन करने एवं उसे अन्ततक अक्षुण रूप निभावत लाने को कहते हैं। परन्तु राजाओं का काम अपने राज्य शाशन को बनाये रखना होता है। अतः उसके लिए येन केन रूपेण अपने पक्ष को प्रबल बनाते चले जाना और अपने विरोधियों को दमन करते रहना होता है। इसलिये राज्य सत्ता हिंसा पूर्ण पाप भय हुआ करती है ऐसा कुछ लोग समझ बैठे हैं। किन्तु विचार करने पर यह ठीक प्रतीत नहीं होता है क्योंकि कर्म जो कि विश्व के कल्याण की चीज है उसे अपने जीवन में उतारने का नाम नीति है। राजा प्रजा का पालक होता है। संपूर्ण प्रजा को पापपङ्क से बचाकर उसे धर्म के पथ पर समारूढ़ कर देना ही राजा का काम है। प्रजा में सभी तरह के लोग होते हैं। अतः जो लोग अपने मनचले पन से उत्पथ की ओर जारहे हों उन्हें नियंत्रित करने केलिये विधान करना शिष्यों

का अनुग्रहण करना उन्हें सत्पथ की ओर बढने के लिये प्रोत्साहन देना और दुष्टों की दुष्टता को निकाल कर शिष्टता के सन्मुख होने को उन्हें वाध्य करना यह राजनीति है। इसलिये यह धर्म से विरुद्ध कैसे कही जा सकती है? यह तो धर्मको प्रोत्साहन देने वाली है। हां इसमें, इतनी वात अवश्य है कि धर्म तत्व सदा अटल है। परन्तु नीति तत्वों में देश, काल की परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। फिर भी उस संविधान का कलेवर जितना भी हो वह सारा का सारा ही जन समाज के हितको लक्ष्य में लेकर किया हुआ होना चाहिये उसका एक भी विधेयक ऐसा नहीं जोकि किसी के भी व्यक्ति गत स्वार्थ को लेकर रचा गया हो।

हिंसा के रूपान्तर

चीन देश में बौद्धों का निवास है उन लोगोंको विश्वास है कि किसी भी प्राणी को मारकर नहीं खाना चाहिये। मुरदा मांसके खाने में कोई दोष नहीं है। वहां ऐसी प्रवृति चल पड़ी है। कि जिस बकरे वगैरह को खाने की जिसकी दृष्टि होती है वह उसको मकान में ढकेल कर कपाट वन्द करदेता है और दो चार दिन में तड़फड़ा करके जब वह मर जाता है तो उसे खा लिया जाता है। कहने को कहा जाता है कि मैंने इसे मारा है थोड़े ही, यह तो अपने आप मर गया हुआ है। परन्तु उसे भले आदमी को सोचना चाहिये कि यदि वह उसे वन्द न करता तो वह क्यों मरता। अतः यह तो उस प्राणी को मारने के साथ २ अपने आपको धोका देना है सो बहुत बुरी बात है।

हां माता अपने पुत्र में कोई बुरी आदत देखती है तो उसे उसके छोड़ने को कहती है और नहीं मानता है तो धमकाने के लिये कभी २ उसे रस्से वगैरह से भी कुछ देर के लिये बांध देती है या मकान के अन्दर बन्द करदेती है। सो ऐसा करना हिंसा में सुमार नहीं होना चाहिये क्योंकि यह तो उसको सुधारने के लिये किया जाता है अन्तरंग में उसके प्रति उसका करुणाभाव ही होता है। देखो माता अपने बच्चे को जब चपेट मारने लगती है तो दिखाती बड़े जोर से है किन्तु बच्चे के गालके समीप आते ही उसका वेग बिल्कुल धीमा पड़ जाता है क्योंकि उसके दिल में दया और प्रेमका भाव होता है ताकि वह सोचती है कि यह डर कर सुधर जावे जरूर किन्तु इसके चोट नहीं आने पाये । सो ऐसा तो करना ही पड़ता है। परन्तु कभी कभी ऐसा होता है कि मनुष्य अपना वैर भाव निकालने के लिये कमजोर अपने पड़ोसी को मुक्कों ही मुक्कों की मार से घायल कर डालता है। या कोई पशु उसकी धानकी ढेरी में मुंह दे जाये तो रोप में आकर ऐसी लाठी वगैरह की चोट मारता है कि उसकी टांग वगैरह टूट जाती है सो ऐसा करना बुरा है।

पशुपालक लोग बैलों को वधिया कर लेते हैं या उनके नाक में नाथ डालते हैं। वनचर लोग सुरभिगाय की पूंछ तरास लेते हैं या हाथी के दांत काट लेते हैं यह भी एक तरह की हिंसा है क्योंकि ऐसा करने में उस पशु को पूरा कष्ट होता है और काटने वाले की केवल स्वार्थपूर्ति है। हां किसी भी रोगी को डांवगैरह दिया जाता है वह बात दूसरी है। किसी से भी शक्ति से अधिक कामलेना सो अतिभार रोपण है। जिस पशु पर पांच मन वजन लादा जा

सकता है, उस पर लोभलालच के वश हो छह मन लादें देना [illegible] चलते २ थक गया है, चल नहीं सकरहा है। उसको जबरन हंण्टर के जोर से चलाते ही रहना। किसी भी नौकर चाकर से रुपये की एवज में सतरह आने का काम लेनेका विचार रखना। इत्यादि सब बातें भी हिंसा से खाली नहीं हैं।

हम देखते हैं कि प्रायः भले भले रईस लोग भी, जब उनका नौकर बीमार हो जाता है और काम नहीं आता है तो उसका इलाज कराने की सोचना तो दूर किनार रहा प्रत्युत उसकी उस दिनकी तनखा भीकाट लेते हैं। भला जरा सोचने की बात है अगर आपकी मोटर या बाईशिकिल खराबहो जावे तो उसकी मरम्मत करावेगें या नही ? यदि कहे कि उसकोतो दुरुस्त कराना ही होगा तो फिर नौकर जोकि आपही सरीखा मानव है ? वह उस निर्जीव बाइसिकिल से भी गया बीता हो गया है ? ताकि आप उसकी परवाह न करें। इसको काम करते २ कितनी देर होगई है भोजन का समय होगया है भूख लग आई होगी इस बात पर कोई ध्यान न देकर सिर्फ अपना काम होजाने की ही सोचते रहना निर्दयता से खाली नहीं है। परन्तु इस साथ में हम यह भी देखते हैं कि अधिकांश नौकर लोग भी मुफत की नौकरी लेना चाहते हैं। काम करने से भी जी चुराते हैं मालिक का काम भले ही बिगड़ो या सुधरो इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं होती है। बल्कि यही सोचते हैं कि समय पूरा हो और कब मैं यहां से चलूं सो यह भी बुरी बात है पाप है। सिद्धान्त तो यह कहता है कि मालिकऔर नौकर में परस्पर पिता पुत्र का सा व्यवहार होना चाहिये।

अहिंसा का माहात्म्य

जो किसी को भी कभी नहीं मारना चाहता उसे भी कोई क्यों मार सकता है ? जिसकी आन्तरिकभावना निरंतर यही रहती है कि किसी को भी कोई तरह का कष्ट कभी भी न होवे तथा इसी विचारानुसार जिसकी वाहारी चेष्टा भी परिशुद्ध होती है उसकी उस पुनीत परिणति का प्रभाव ऐसा होता है कि उसके समुख में आउपस्थित हुआ एक खुंखवार प्राणी भी जरा सी देर में शांत हो रहता है। उसके ऊपर आई हुई आपत्ति भी उसके आत्मवल से क्षण भर में सम्पत्ति के रूप परिणित हो जाती है। इस बात के उदाहरण हमारे पुरातन इतिहास में भरे हुए हैं। वारिषेण पर चलाया हुआ खड्ग उसका कुछ भी विगाड़ न कर सका, सोमासती को मारने के लिये लाया हुआ काला नाग उसके छूते हुये ही फूलमाला वनगया और एक गठरियामें वान्धकर तालाव में डाले गये राजकुमार और यमदण्ड चाण्डाल इन दोनों में से राजकुकार तो मगरमच्छ द्वारा भक्षण करलिया गया किन्तु यमदण्ड चाण्डाल बालवाल वच गया इत्यादि सब ये अहिंसा के ही प्रभाव हैं।

सुना जाता है कि दिग्विजय के लिये प्रस्तुत हुआ सिकन्दर जव भारत से वापिस लौट चला तो रास्ते में उसकी एक परमहंस महात्मा से भेंट हुई। उन्हें देखते ही सिकन्दर के रोष का ठिकाना न रहा। वह वोला अवे वे अदव तूं इस प्रकार लापरवाह होकर कैसे खड़ा है ? तुझे मालूम नहीं कि सामने से कौन आ रहा है ! खवरदार हो, संभलजा वरना तो फिर देख यहतलवार आती है

इस प्रकार कहते हुए तलवार निकाल कर वह उनके ऊपर लपका। महात्मा तो अपने ध्यान में मस्त थे! परमात्मा से प्रार्थना कर रहे थे कि हे भगवान् सबको सुबुद्धि दे। वे क्यों उसकी बात सुनने लगे अतः उसी प्रकार निःशङ्क खड़े रहे। तब सिकन्दर के मन में एका-एक परिवर्तन होगया कि अहो! यह तो खुदा का रूप है प्रकृति की देन है अपने सहजभाव से खड़ा है मैं क्यों व्यर्थ ही इस पर रोष कर रहा हूं? एवं वह अपनी तलवार को वापिस म्यान में कर उनके चरणों में गिरपड़ा और बोला कि प्रभो! मैं समझता था कि मुझे कोई नहीं जीत सकता परन्तु आपने मुझे जीत लिया है फिर भी मैं इस पराजय को अपना परम सौभाग्य समझता हूं। इसी प्रकार ईसा पूर्व छठीशताब्दी में एक लुटेरा होगया हुआ है। वह जिसे भी पाता था उसी की हाथों की अंगुलियो को जला दिया करता था और उसके पासके माल असबाब को छीनलिया करता था इसीलिये लोग उसे अंगुलि माल कहते थे। वह किसी भी राजा महाराजा से नहीं पकड़ा जासका था। एकबार महात्माबुद्ध उधर होकर जाने लगे तो लोग बोले महात्मन् इधर को मत जाइये इधर में तो अंगुलि माल है जोकि बड़ा खूंखवार है परन्तु उन्होंने लोगों के कहने को नहीं सुना और चले ही गये। जबअंगुलिमाल ने देखा तो बोला अबे! कौन है खड़ा रह कहाँ जा रहा है। बुद्ध ने चलते २ जवाब दिया मैं तो खड़ाही हूँ तूं चलता है सो तूं खड़ा रह। अंगुलिमाल ने कहा बड़ा विचित्र आदमी है चला जारहा है और बोलता है कि खड़ा तो हूँ, ठहरजा नहीं तो फिर गोली से उड़ा दिया जावेगा। बुद्ध ने फिर कहा-भाई मैं ठीक तो कह रहा हूँ इन दुनियाँ के लोगों

को ठहरने के लिये जो बात होनी चाहिये मैं तो उसी बात पर स्थित हूं परन्तु तूं इसके इधर उधर जा रहा है अतः तुझे उसको सम्भालना चाहिये। बस इतना सुनना था कि अकुंलिमाल के विचारों में बिलकुल परिवर्तन होगया। अहो ! मैं शरीर से मानव होकर भी मानवता से बिलकुल दूर हूँ। मुझे इन महात्मा के निकट रहकर मनुष्यता का पाठ पढ़ना चाहिये। इस तरह सोच कर उनका शिष्य बन गया।

सत्य की पूजा

आम तौर पर जैसा का तैसा कहने को सत्य समझा जाता है। परन्तु भगवान महावीर ने वाचनिक सत्य की अपेक्षा मानसिक सत्य को अधिक महत्व दिया है। हम देखते हैं कि काणे को काणा कहने पर वह चिढ़ उठता है। उसके लिये काणा कहना यह सत्य नहीं, किन्तु झूठ बन जाता है। क्योंकि उसमें वह अपनी अवज्ञा मानता है। है भी सचमुच ऐसा ही। जब उसे नीचा दिखाना होता है तभी कोई उसे काना कहता है ! मानो अन्धे को अन्धा कहने वाले का वचन तो सत्य होता है फिर भी मन असत्य से घिरा हुआ होता है। क्षुद्रता को लिये हुये होता है। अन्यथा तो फिर आइये, सूरदासजी ! इन मिष्ट शब्दों में उसका आमन्त्रण किया जा सकता है। हाँ, वहीं कोई छोटा बच्चा बैठा हो और उसकी मां उससे कहे कि बेटा ! यह अन्धा है, इसे इसकी आखों से दीखता नहीं है। इस पर फिर बच्चा कहे कि अले यह अन्धा है इसे इसकी आखों से दीखता नहीं है। तो यह सुन कर औरों की ही तरह उस अन्धे को भी दुःख नहीं

होगा प्रत्युत वह भी प्रसन्न ही होगा। क्योंकि बच्चे के मन में फितूर नहीं किन्तु वह सरल होता है। वह तो जैसा सुनता है या देखता है वैसा ही कहना जानता है। बनावटीपन उसके पास बिल्कुल नहीं होता।

बालक के सरल और स्वाभाविक बोलने पर जब लोग हंसते हैं तो मेरे विचार में वह उन्हें हंसते देख कर अपने विकाशशील हृदय में सोचता है कि मेरे इस बोलने में कुछ कमी है इसी लिये ये सब मेरा उपहास कर रहे हैं। बस इसीलिये वह अपने उस बोलने में धीरे २ बनावटीपन लाने लगता है। मतलब यह हुआ कि सत्य बोलना तो मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है किन्तु झूठ बोलना सीखना पड़ता है।

लोग कहा करते हैं कि दुनियांदारी के आदमी का काम असत्य बोले बिना नहीं चल सकता। परन्तु उनका यह विश्वास उल्टा है क्योंकि किसी भी कार्य के होने या करने में सत्य क्यों रोड़ा अटकाने लगा ? बल्कि यों कहना चाहिये कि सत्य के बिना काम नहीं चल सकता। जो लोग व्यर्थ के प्रलोभन में पड़ कर असत्य के आदि बने हुए हैं उन्हें भी अपने असत्य पर सत्य का मुलम्मा करना पड़ता है तभी गुजर होती है। फिर भी उनके मन में यह भय तो लगा ही रहता है कि कहीं हमारी पोल न खुल जावे। ऐसी हालत में फिर सत्य की ही शरण क्यों न लेनी चाहिये। जिससे कि निःसंकोच होकर चला जा सके। कुछ देर के लिये कहा जा सकता है कि इस स्वार्थभरी दुनियां में सत्यप्रिय को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है सो भी कब तक ? जब तक लोगों को यह

पता न हो जावे कि यहाँ पर असत्य को कोई स्थान नहीं है। लोग सोचते हैं कि दुनियां दुरङ्गी है और दुनियाँ में ही यह भी रहता है। अतः उस दुरंगेपने से बच कैसे सकता है। बस इसीलिये सत्यवादी को लोग कसौटी पर कस कर देखना चाहते हैं। एवं जहां वह उनकी कसौटी पर खरा उतरा कि फिर तो लोग उसका पीछा नहीं छोड़ते।

एक समय की बात है कि एक मारवाड़ी भाई श्री वीर सागर महाराज के दर्शन करने के लिये आया। महाराज ने उससे पूछा क्या धन्धा करते हो? तो जबाब मिला कि आसाम में कपड़े की दूकान है। महाराज ने कहा कि सत्य पर व्यापार करो तो अच्छा हो। इस पर वह हिचकचाहट करने लगा। महाराज ने फिर कहा, कमसे कम तुम छः महीने के लिये ऐसा करो, समझो कि बैठा खा रहा हूं। तब उसने कहा हाँ इतना तो में कर सकता हूं। सत्यवादी को इस बात पर ध्यान रखना होता है कि मेरे साथ में जिसका लेनदेन हो उसे अच्छा सौदा मिले एवं दो पैसे कम में मिले तथा प्रेम का बर्ताव हो। बस उसने ऐसा ही करना शुरू किया। फिर भी जोकि पहले से मोल मुलाई करते आरहे थे उन्हे एकाएक उस पर विश्वास कैसे हो सकना था। अंतः फिर ग्राहक लौट कर जाने लगे। मगर जब देखा की उस दुकान से और दुकान पर हरेक चीज के एक दो पैसे अधिक ही लगते हैं तो लोगों के दिल में उसकी दुकान के प्रति प्रतिष्ठा जम गई। फिर क्या था? उत्तरोत्तर रोज अधिक से अधिक संख्या में ग्राहक आने लगे और बेबूझ होकर सौदा लेने लगे।

सत्यवादी के स्मरण रखने योग्य बातें

जो सत्य का प्रेमी हो सच्चाई पर भरोसा रखता हो उसे चाहिये कि वह किसी की भी तरफदारी कभी न करे। अपने गुण अपने आप न गावे। दूसरों के अवगुण कभी प्रकट न करे। किसीकी कोई गोपनीय बात कभी देखने जानने में आजावे तो औरों के आगे कभी न कहे। हमेशा नपे तुले शब्द कहे। एवं अपने आप पर काबू पाये हुए रहे तभी वह अपने काम में सफल हो सकता है।

उदाहरण स्वरूप हमें यहां श्री सत्यवादी हरिश्चन्द्र का स्मरण हो आता है जो कि शयन दशा में दे डाले हुये अपने राज्य को भी त्याज्य समझ लेते हैं और फिर उसको उत्सर्ग करने के प्रतिफल रूप में बनारस के कालू भङ्गी के यहाँ कर्मकर हो रहने को भी अपना सौभाग्य समझते हैं। इधर उन्हीं के समान उनकी पत्नी जो कि एक गृहस्थ के यहां नोकरानी बन कर अपना गुजर बसर करने लग रही थी। उसके पुत्र रोहितास को सर्पकाट जाता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। उसकी लास को वह (रानी) लेजाकर जब हरिश्चन्द्र घाट पर जलाने लगती है तो हरिश्चन्द्र अपने मालिक कालू के द्वारा निश्चित की हुई टैक्स वसूल किये बिना जलाने नहीं देते हैं। अपने मन में जरा भी संकोच नहीं करते है कि यह मेरे पुत्र की लास है और मेरी ही स्त्री इसे जला रही है। बल्कि सोचते हैं जब मेरे मालिक ने टैक्स निश्चित कर रखा है और उसकी वसूली के लिये मुझे यहां नियत किया है, फिर भला कोई भी क्यों न हो उससे टैक्स वसूल करना मेरा धर्म है। ओह ! कितना ऊंचा आदर्श है जिसे स्मरण

कर हृदय आनन्दविभोर हो जाता है। परन्तु उन्हीं की सन्तान प्रतिसन्तान आज के इन भारतवासियों की तरफमें जब हम निगाह डालते हैं तो रुलाई भी आ जाती है। क्योंकि आज के हम तुम सरीखे लोग दो दो पैसे में अपने ईमान धर्म को बेचने के लिये उतारू हो रहते हैं। बल्कि कितने ही लोग तो बिना मतलब ही झूठी बातें बनानें में प्रवृत होकर अपने आपको धन्य मानते हैं। परन्तु उन्हें सोचना चाहिये कि सत्य के बिना मनुष्य का जीवन वैसा ही है जैसा कि बकरी के गले में हो रहने वाले स्तन का होता है।

सत्य परमेश्वर रूप है

मैं जब बालबोध कक्षा में पढ़ रहा था तो एक दोहा मेरी किताब में आया:-

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जिसके मन में साँच है, वा के मनमें आप ॥

इसमें आये हुए आप शब्द का अर्थ अध्यापक महोदय ने परमेश्वर बतलाया जो कि मेरी समझ में नहीं आया। मैं सोचने लगा सांच तो झूठ का प्रतिपक्षी है, बोलचाल की चीज है, उसका ईश्वर के साथ में क्या सम्बन्ध हुआ। परन्तु अब मैं देखता हूँ कि उनका कहना ठीक था। क्योंकि दुनियाँ के जितने भी कार्य हैं वे सब सत्य के भरोसे पर ही चल रहे हैं। आम लोगों की धारणा भी यही है कि दुनियाँ का नियन्ता या कर्ता धर्ता परमेश्वर है। ऐसी हालत में यह ठीक ही है कि सत्य ही परमेश्वर है जिसके कि सर्वथा न होने पर विश्व के न होने पर विश्व के सारे काम ठप हो

जाते है। महात्मा गाँधी ने जब सत्याग्रह का काम चालू किया तो सबसे पहले पहल उन्होंने यही कहा कि जो लोग परमेश्वर पर भरोसा रखते हों वे ही लोग मेरे इस आन्दोलन में शामिल होवें। इस पर किसी भद्र पुरुप ने सवाल किया कि क्या फिर आपके इस काम में जैन लोग न आवें? क्योंकि वे लोग ईश्वर को नहीं मानते हैं। परन्तु महात्मा जी ने कहा कि तुम भूलते हो क्योंकि जो सत्य और अहिंसा को मानता है वह ईश्वर को अवश्य मानता है।

मतलब यह है कि जैन लोग ईश्वर को नहीं मानते सो बात नहीं किन्तु उनके विचारानुसार ईश्वर हमारे हरेक कार्य करने वाला हमारा कोई नौकर नहीं है। किन्तु पदार्थ परिणामनशील स्वभाव है। जिसका कि दूसरा नाम सत्य है उस पर भरोसा लाकर अपना काम हम खुद करते हैं। हमें जब जो काम करना होता है तब अपने साहस धैर्य और प्रयत्न से उसके योग्य साधन सामग्री को जुटाकर एवं उसकी बाधक सामग्री से बचते हुये रहकर उसे कर बताते हैं। हां हम छद्मस्थों की बुद्धी मन्दता से उर्पयुक्त प्रयत्न में जो कुछ कमी रहजाती है तो उतनी ही उस कार्य में सफलता कम मिलती है एवं प्रयत्न विपरीत हो जाने पर कार्य भी विपरीत हो रहता है। हां कितने ही कार्य जैसे वर्षा का होना, सर्दी का फैलना, गर्मी का पड़ना आदि कार्य उर्पयुक्त सत्य के आधार पर तत्काल के वातावरण को पाकर ही सम्पन्न हो रहते हैं उन्हें प्राकृतिक कहा जाता है। परन्तु उर्पयुक्त वातावरणके समुद्गम में भी अस्मादि-प्राणीयों का अहिंसा भाव उपयोगी होता है। इस तरह से

सत्यनारायण को विश्व का सम्पादक तथा अहिंसा उसकी शक्ति है ऐसा कहा जावे तो कोई न होती बात नहीं है।

अदत्तादान का विवेचन

बलात्कार से या धोखेबाजी से किसी दूसरे के धन को हड़प जाना सो अदत्ता दान है। बलात्कार से दूसरे के धन को छीन लेने वाला डाकू कहलाता है तो बहानाबाजीसे किसीके धनको लेले ने वाला चोर कहलाता है। चोरी या डकैती करना किसी का जातीय धन्धा नहीं है, जो ऐसा करता है वही वैसा बन रहता है। डाकूको तो प्रायः लोग जान जाते हैं अतः उससे सावधान होकर भी रह सकते हैं मगर चोर की कोई पहचान नहीं है। अतः उससे बचना कठिन है। जोकि चोर अनेक तरह का होता है जिसके प्रचलन को चौर्य कहना चाहिये। वह भी डाका डालने की तरह से अदत्ता दान है। विना दिये ही ले लेना है। जैसे किसी सुनार को जेवर बना देने के लिये सोना दिया गया तो वह जेवर बना देता है और उसकी उचित मजूरी लेता है वह तो ठीक, किन्तु उसमें थोड़ी बहुत खाद अपनी तरफ से मिला देता है और उसकी एवज में सोना जो रख लेता है वह उसका अदत्तादान हुआ, विना दिये लेना हुआ अतः चोर ठहरता है। दर्जी कोट वगैरह बनाकर देता है और उसकी उचित सिलाई लेता है ठीक है किन्तु जहाँ तीन गज कपड़ा लगता हो वहां बहाना बनाकर साढे तीन गज लेलेवे तो वह अदत्तादान है। ऐसे ही और भी समझलेना चाहिये जैसा कि प्रायः यहां पर देखने में आ रहा है। कोई भी आदमी पूर्ण विश्वास के साथ में

यह नहीं कह सकता कि बाजार में वह एक चीज तो ठीक मूल्य पर और सही सलामत मिल जावेगी। जीरे में गाजर का बीज, काली मिर्चों में ऐरण्ड ककड़ी के बीज, घी में डालडा इत्यादि हर एक चीज में कोई न कोई तत्सदृश अल्प मूल्य की चीज का समिश्रण करके देना तो साधारण बात है। और तो क्या शरीर को स्वस्थ बनाने के लिये ली जानेवाली दवावों तक में बनावटीपन होता है। जिससे कि देशकी परिस्थिति दिन पर दिन भयंकरसे भयंकर बनती चली जा रही है। मैंने एक किताब में पढ़ा था कि एक बार एक हिन्दुस्तानी भाई विलायत में घूम रहा था सो क्या देखता है कि एक बहिन जिसके आगे दूध का बर्तन रखा हुआ है, फिकर में खड़ी है अतः उसने पूछा कि बहिन तुम क्या सोच रही हो? उसने कहा भाई साहेब! मैंने एक महाशय को ५ सेर दूध देना कर दिया है और मेरी गाय ने आज जो दूध दिया वह पाव कम पांच सेर है अतः मैं सोच रही हूँ कि क्या करूं? इसे पूरा कैसे किया जा सकता है। इस पर उसी हिंदुस्तानी भाई ने तपाक से कहा कि वाह यह भी कोई फिक्र की बात है क्या? इसका तो उपाय बहुत आसान है इसमें से भले ही तुम पाव भर दूध और भी निकाल लो तथा इसमें आध सेर पानी मिलाकर देआओ। उसने तो स्याबास पाने के लिये यह कहा था मगर उस बहिन ने कहा छी छी यह तो बहुत बुरी बात है ऐसा करने से हमारे देश के बाल बच्चे पोष कैसे पा सकेगें? खैर कहने का मतलब यह है कि मिलावट बाजी ने बहुत तरक्की पाई है जिससे हमारे देश का भारी नुकसान हो रहा है। सरसों के तेल में सियाल काँटी का तेल मिलाकर दिया जाता है

जिसको उपयोग में लाने वाले, उसको शरीर पर लगाने वाले के शरीर में फोड़े फुंसी हो जाते हैं। परन्तु देने वाले को इसकी कोई चिन्ता नही, उसे तो सिर्फ पैसा प्राप्त करलेने की सूझती है। आज पैसा परमेश्वर बन रहा है किन्तु मनुष्य मनुष्य भी नहीं रहा, कैसी दयनीय दशा है कहा नहीं जाता। मैं सोच ही रहा था कि एक आदमी बोला महाराज क्या आश्चर्य है ? मिलावट में तो थोड़ी बहुत चीज रहती हैं। यहाँ तो चाय के बदले सर्वेसर्वाचनों के छिलके होते हैं और लेने वाले को पता भी नहीं पड़ता, हद होगई।

आज कल के लोगों का दृष्टिकोण

भूत पर दो चीजें मुख्य हैं शरीर और आत्मा। शरीर नश्वर और जड़ है तो आत्मा शाश्वत और चेतन। इन दोनों का समायोग विशेष मानव जीवन है। अतः शरीर को पोषण देने के लिये धन की जरूरत होती है तो आत्मा के लिये धर्म की एवं साधक दशा में मनुष्य के लिये यद्यपि दोनों ही अपेक्षनीय हैं। फिर भी हमारे बुजुर्गों की निगाह में धर्म का प्रथम स्थान था। हां उसको सहायक साधन रूप में धन को भी स्वीकार किया जाता था। परन्तु जहां पर वह धन या उसके अर्जन करने की तरकीब यदि धर्म की घातक हुई तो उस ऐसे धन को लात मार कर धर्म का संरक्षण किया करते थे। किन्तु आज के लोगों का दृष्टिकोण सर्वथा इसके विपरीत है। आज तो धर्म को ढकोसला कह कर धन को ही सब कुछ समझा जाता है। एन केन रूपेण पैसा बटोरने का ही लक्ष्य रह गया है। कहीं कोई बिरला ही मिलेगा जो कि अपनी मेहनत की कमाई पर

गुजर बसर कर रहा हो प्रायः प्रत्येक का यही विचार रहता है कि कहीं से लूट खसोट का माल हाथ लगजावे। कहीं पाकेट मारी का हल्ला सुनाई देता है तो कहीं जुआ चोरी का। कोई खुद चोरी करता है तो कोई उसके लाये हुये माल को लेकर उसे प्रोत्साहन देता है। आयात निर्यात की चोरियों का तो कुछ ठिकाना ही नहीं रहा है। सुना गया है दूसरे देशों से सोना लाने वाले लोग जांघ फाड़ कर वहाँ भरलाते हैं। कोई सोने की गोलियाँ बनाकर मुंह में रख लेता है बिना टिकट रेलगाड़ी वगैर हमें जाना आना तो भले २ लोगों के मुंह से सुना जाता है मानो वह तो कोई अपराध ही नही। मैं तो कहता हूं कि व्यक्तिगत चोरी की अपेक्षा से भी स्वार्थवश होकर कानून भङ्ग करना और सरकारी चोरी करना तो और भी घोर पाप है, अपराध है। क्योंकि उस का प्रभाव तो सारी समाज पर जा पड़ता है। परन्तु जो कोई सिर्फ अपनी ही हवस पूरी करना जानता है उसे यह विचार कहां। वह तो किसी भी तरह से अपना मतलब करना चाहत है। सरकार तो क्या, लोग तो धर्मायतनों से भी धोखा करने में नहीं चूकते हैं। गोशाला सरीखी सार्वजनिक धार्मिक संस्थाओं में भी आये दिन गड़बड़ी होती हुई सुनो जाती है। प्रामाणिकता का कहीं दर्शन होना ही दुर्लभ हो रहा है। सरकार प्रबन्ध करते करते थक गई है और अपराध दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं। लोग कहते हैं कि सिंह बड़ा क्रूर जानवर होता है परन्तु मैं तो कहता हूं कि ये बिना मार्का के सिंह उससे भी अधिक क्रूर हैं जो कि देश भर में विप्लव करते चले जारहे हैं।

एक रोज एक निशानबाज आदमी घोड़े पर चढ़ कर जङ्गल की ओर चल दिया कुछ दूर जाने पर उसे एक बाघ दीख पड़ा तो उसने अपना घोड़ा उसी बाघ के पीछे कर दिया। थोड़ी देर बाद वह बाघ तो अदृश्य हो गया और उसकी एवज में उसे एक साधु से भेंट हुई। वह तो साधु के पैरों पड़ा। साधु ने कहा तुम कौन हो तो वह बोला प्रभो एक तीरन्दाज हूं और क्रूर प्राणियों की शिकार किया करता हूँ। आज एक बाघ मेरे आगे आया था परन्तु नमालूम अब वह कहां गायब हो गया और अब तो रात होने को आगई है। साधु ने कहा कोई हर्ज नहीं रात को शिकार और भी अच्छा मिलता है चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। चलते २ मदनबाजार में एक वेश्या के घर पर पहुंच जाते हैं तो क्या देखते हैं कि एक महाशय वेश्या के साथ बैठे २ शराब पीते जाते हैं और कहते जाते हैं कि हे प्रिये इस दुनियां में मेरी तो उपास्य देवता एक तूं ही है। दिन में साधु बनकर सड़क पर बैठ जाता हूं और किसी भगत को फीचर के आँक तो किसी को सट्टे फाटके की तेजी मन्दी बता देता हूँ एवं कोई पक्का जुवारी मिल गया तो उसे विजय कारक यन्त्र देने का ढोंग रचकर माल ऐठता हूं: दिन भर में जो कुछ पाया वह रात को आकर तेरी भेट चढ़ा जाता हूं। आगत साधु अपने साथी तीरन्दाज से बोला कि कहो कैसा शिकार है मगर अब दूर थोड़ी आगे चलो। चलकर चीफ जज के मकान पर पहुंचे तो वहाँ पर जज साहेब के सामने एक वकील महाशय खड़े हैं जो कि एक हजार मोहरों की थैली देते

हुये उन्हें कह रहे हैं कि श्रीमान् जी मेरे मोकील का मुकदमा आपके पास विचारार्थ आया हुआ है जिसमें उसके लिये बलात्कार के अभियोग स्वरूप कारागार का हुकम अदालत ने निश्चित किया है। प्रार्थना है कि विचार करते समय आप उसे उससे उन्मुक्त रहने देने की कृपा करें और बाल बच्चों के लिये यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें।

जिसे देखकर तीरन्दाज बोला ओह! बड़ा अनर्थ है। यहां पर तो स्वार्थवश होकर न्याय का ही गला घोटा जा रहा है किन्तु साधू बोला अभी थोड़ा और आगे चलना है। चलकर एक इन्सपेक्टर (निरीक्षक) के कमरे के पास पहुंच जाते हैं। वहां क्या देखते हैं कि उनके सम्मुख मेज पर तीन चार बन्द बोतलें रखी हैं जिनमें शुद्ध पानी भरा हुआ है और आरोग्य सुधा का लेविल चिपका हुआ है। आगे एक आदमी खड़ा है और कह रहा है महाशय! अपराध क्षमा कीजिए, यह दो हजार मोहरों की थैली लीजिए और इन बोतलों के बदले में ये आरोग्य सुधा की यह असली बोतलें रख देने दीजिए। अब तो तीरन्दाज के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह कहने लगा कि हे भगवन् यहां तो जिधर देखो उधर ही यही हाल है किस किस को तीर का निशान बनाया जाय। वस्तुतः विचार कर देखा जाय तो जिस प्रकार ये लोग अपने जीवन के लिये औरों के खून के प्यासे बने हुये हैं। अन्याय करते हैं तो मैं क्या इन सबसे कम हूं? ये लोग तो स्वार्थवश अन्धे होकर ऐसा करते हैं। मैं तो व्यर्थ इनके प्राणों का ग्राहक हो रहा हूँ। अगर कहूं कि क्रूरता का अन्त करना है तो भला कहीं क्रूरता के द्वारा क्रूरता का अन्त थोड़े

ही होने वाला है। क्रूरता को मारने के लिये शान्ति की जरूरत है तो स्वार्थ को मारने के लिये त्याग की और दूसरों को सुधारने के लिये अपने आप सुधर कर रहने की। एवं अपने आप सुधर कर रहने के लिये सबसे पहले काम पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है।

काम पर विजय श्रेयस्कर है—

काम यह संस्कृत भाषा में इच्छा का पर्यायवाची माना गया है। वैसे तो मनुष्य नाना प्रकार की इच्छाओं का केन्द्र होता है किन्तु उन इच्छाओं में तीन तरह की इच्छायें प्रसिद्ध हैं। खाने की, सोने की, और स्त्री प्रसंग की। इनमें से दो इच्छायें बालकपन से ही प्रादुर्भूत होती हैं तो स्त्री प्रसंग की इच्छा युवावस्था में विकसित हुआ करती है। एवं पहले वाली दोनों इच्छाओं को सम्पोषण देना एक प्रकार से शरीर के सम्पोषण के लिए होता है किन्तु स्त्री प्रसंग को कार्यान्वित करना केवल शरीर के शोषण का ही हेतु होता है। अतः पूर्व की दो इच्छाओं को हमारे महर्षियों ने काम न कहकर आवश्यकता कहा है एवं कुछ हद तक उन्हें पूर्ण करना भी अभिष्ट बताया है। इसलिये गृहस्थ की तो बात ही क्या ? साधुओं तक को उनकी पूर्ति के लिये यथोचित आज्ञा प्रदान की है परन्तु स्त्री-प्रसंग की इच्छा को तो सर्वथा नियन्त्रण योग्य ही कहा है यह बात दूसरी कि हरेक आदमी उसका पूर्ण नियन्त्रण करने में समर्थ न हो सके। एवं कामेच्छा को नियन्त्रण करना इसलिये आवश्यक कहा गया है कि कोई भी मरना नहीं चाहता हर समय अमर रहने के लिये ही अपना।

बुद्धि से सोचता है। काम को जीतना सो बुद्धि के विकास का हेतु और मृत्यु का जीतना है परन्तु काम सेवन करना बुद्धि के विध्वंश के लिए होकर मृत्यु को निमन्त्रण देना है। अपने आप मरण मार्ग का निर्माण करना है।

हमारे हित चिन्तक महात्माओं ने उपर्युक्त सिद्धांतको लक्ष्य में रखकर ही हम लोगों के लिये ब्रह्मचर्य का विधान किया है। बतलाया है कि मनुष्य अपने विचारों में स्त्री को स्त्री ही नहीं समझता चित्त में उसकी कभी भी याद ही नहीं आने देना जैसे पूर्ण ब्रह्मचर्य को भी यदि धारण नहीं कर सके तो एक देश ब्रह्मचर्य का पालन तो अवश्य ही करे। स्पष्ट युवावस्था आने सेपूर्व कुमार काल में कभी स्त्री प्रसंग का नाम न लें। वहां तो अपना भावी जीवन सुन्दर से सुन्दर बने इसकी साधन सामग्री बटोरने में ही समय बीतना चाहिये और वृद्धावस्था आ जाने पर यदि स्त्री विद्यमान भी हो तो उसका त्याग कर सिर्फ परमात्मा स्मरण में अपने समय को विताने लगे। रही मध्य की युवावस्था सो वहां पर भी स्त्री को आराम देने की मशीन न मानकर अपने शरीर में आप्राप्त हुये अवस्थोचित विकार को दबाने के लिये मधुर दवा के रूप में उसका सेवन किया जा सकता है।

हमारे पूर्वाचार्यों ने इसे पशु कर्म बतलाया है। इसका मतलब यह कि पशु ऋतुकाल में ही एक बार ही ऐसा करता है फिर नहीं अब अगर हम यदि मनुष्य कहलाते हैं तो हमें उससे अधिक संयमित होना चाहिये। परन्तु यदि उस नियम को भी भंग करके मनमाना करते है तो मनुष्य तो क्या पशु भी नहीं बल्कि महर्षियों की

निगाह में पशु से भी हीन कोटि पर आ जाते हैं। परन्तु खेद है कि इस बात का विचार रखने वाला कोई विरला ही महानुभाव होगा। हरएक मनुष्य के लिये तो पर्वादि के दिन भी ब्रह्मचर्य पूर्वक रह जाना बहुत बड़ी बात हो जाती है कितने ही तो ऐसे भी निकल आयेंगे जिनको अपनी पराई का भी विचार शायद ही हो। कुछ लोग तो बेहूदेपन से भी अपने ब्रह्मचर्य को बरबाद कर डालते हैं। आज इस विज्ञान की तरक्की के जमाने में तो एक और कुप्रथा चल पड़ी है वह यह कि जहां दो चार बच्चे हो ले तो फिर बच्चेदानी निकलवा डालनी चाहिये, ताकि बच्चा होने का तो कुछ भी भय न रहे एवं निडर होकर संसार का मजा लूटा जावे। कोई कोई तो शादी सम्बन्ध होते ही आप्रेशन करवा डालते हैं ताकि बच्चे की आमदनी होकर उनकी गृहदेवी का नूर न बिगड़ने पावे। भला सोचो तो सही इस विलासिता की भी क्या कोई हद है? जहां कि अपनी क्षणिक घृणित स्वार्थपूर्ति के लिये प्राकृतिक नियम पर भी कुठाराघात किया जाता है। भले आदमी अपने लंगोट को ही वश कर क्यों न रखे ताकि उनका परमात्मा प्रसन्न हो एवं उन्हें वास्तविक शान्ति मिले।

विवाह की उपयोगिता

आजकल के नव विचारक लोगों का कहना है कि विवाह की क्या आवश्यकता है वह भी तो एक बन्धन ही तो है। बन्धन से मुक्त हो रहना मानवता का ध्येय है। फिर जान बूझकर बन्धन में पड़ रहना कहां की समझदारी है स्त्री को और पुरुष को दोनों को दाम्पतिक जीवन से विहीन होकर सर्वथा स्वतन्त्र रहना चाहिये।

ठीक है विवाह वास्तव में बन्धन है परन्तु विचार यह कि उससे मुक्त हो रहने वाला जावेगा कौनसे मार्ग से ? अगर वह ब्रह्मचर्य हो रहता है तब तो है ठीक, उसे विवाह करने के लिये कौन वाध्य करता है ? मगर ऐसा तो सभी स्त्री पुरुष कर नहीं सकते हैं जिसने अपनी वासना के ऊपर नियन्त्रण पा लिया हो ऐसा कोई विरला व्यक्ति ही कर सकता है। वाकी के स्त्री पुरुष तो अपनी वासनातृप्ति के लिये इधर से उधर दौड़ ही लगावेंगे। फिर उनमें और पशुओं में अन्तर ही क्या रह जावेगा ? बल्कि पशुओं का तो एक तरह से निर्वाह भी है क्योंकि वे लोग विवाह वन्धन से नहीं तो प्राकृतिक वन्धन से तो वन्धे हुए रहते हैं। । इस बारे में वे अपनी सीमा से वाहर कभी नहीं होते, परन्तु मनुष्य में ऐसी वात नहीं है तथा वह एकान्त सौंदर्य का उपासक होता है जब तक सौंदर्य है तब तक ही एक दूसरे को याद करता है फिर कौन किसी को क्यों पुछेगा तो कैसे निर्वाह होगा ? किन्तु मनुष्य एक सामाजिक जीवन विताने वाला प्राणी है। सामाजिकता का मूल आधार विवाह सम्बन्ध का होना ही है। अतः उसे सुचारू रखना समझदारों का कर्त्तव्य है हां, वर्तमान में उसमें जो खराबियां आ घुसी हैं उनका दूर करना परमावश्यक है।

विवाह का मूल उद्देश्य

सामाजिकता को अक्षुण वनाये रखना है और दुराचार से दूर रहकर भी वैषयिक सुख की मिठास को चखते रहना जैसे कि हमारे पूर्व विद्वान श्री मदाशाधर के रति वृत्त कुलोन्नति इस वाक्य

से स्पष्ट हो जाता है। यह जभी बन सकता है कि विवाहित दम्पतियों में परस्पर सौहार्दपूर्ण प्रेमभाव हो। इसके लिये दोनों के रहन सहन शील स्वभाव में प्राय हर बात में समकक्षता होनी चाहिए। अन्यथा तो वह दाम्पत्य पथ कण्टकाकीर्ण होकर सदा के लिये क्लेश का कारण हो जाता है। जैसा कि सोमासती आदि के आख्यानों से जान लिया जा सकता है। एवं इस अनबन को दूर हटाने के लिये हमारे पूर्वजों ने एक स्वयंवर प्रथा को जन्म दिया था। जिसमें कि कन्या अपनी बुद्धिमता से अपने योग्य पति को स्वयं ढूंढ निकालती थी। उदाहरणार्थ गीतकला ने अपनी संगीतज्ञता के द्वारा धन्यकुमार को स्वीकार किया था। परन्तु ऐसा सभी जगह नहीं होता था बल्कि अधिकाँश कन्याओं का तो उनके माता पिता ही योग्य वर के साथ संयोजित करते थे। तो वे सब भी वहाँ धनादिक और सब बातों पर कोई खास लक्ष्य न देकर यह जरूर देखते थे कि जिस वर के साथ हम अपनी बाई का सम्बन्ध करने जा रहे हैं उसका शील-स्वभाव इसके साथ मेल खाता है या नहीं।

एक बहुत बड़ा बादसाह था जिसके एक लड़की हुई जो कि पूर्व जन्म के संस्कार विशेष से जनता की सेवा करने वाली, सन्तोष स्वभाव वाली, सादा खाना और सादा पहनावा रखने वाली थी किन्तु अपने सहज सौन्दर्य से और अपनी सहेलियों में सब से बढ़कर थी अतः जब वह विवाह योग्य हुई तो बड़े २ बादशाहों के लड़कों ने अपनी सहयोगिनी उसे बना रखने की उत्कण्ठा प्रगट की परन्तु उसके पिता बादशाह ने सोचा कि इसके लिये जो वर हो वह इसी जैसी प्रकृतिका होना चाहिये। अब एक

रोज बादशाह घूमने को निकला तो कुछ दूर जङ्गल में चला गया। वहां उसकी एक नवयुवक से भेट हुई जो कि वहाँ कुटिया बना कर रह रहा था। अपने खेत में उसने आम, अमरूद, नारङ्गी अनारादि के चार छह पेड़ लगा रखे थे। बाकी जमीन में खेती करके अपनी गुजर करता था और आगत लोगों की सेवा करके अपने जन्म को सफल बना रहा था। बादशाह को आया जान उसने उचित स्वागत किया। बादशाह को उसकी चेष्टा से प्रसन्नता हुई तो वह बोला कि मैं मेरी लड़की की शादी आपके साथ करना चाहता हूं। युवक ने कहा प्रभो! आप अपनी लड़की की शादी मेरे साथ कैसे कर सकोगे? मैं तो मेहनत करने वाला हूँ। सद कमाता और सद खाता हूँ। बादशाह बोला, तुम्हें इसकी कुछ चिन्ता नहीं, तुम मेरे साथ चलो। युवक बादशाह के साथ में हो लिया। जाते ही बादशाह ने अपनी शाहजादी को उसकी गैल करदी। जब कुटिया के समीप में आये तो शाहजादी कुटिया में घुसने से रुकी। युवक ने पूछा कि प्रिये! क्या बात है? तो जवाब मिला कि सामने में चुल्हे पर क्या पड़ा है? तब फिर युवक बोला कि चार रोटियां सवेरे बनाईं थी, उनमें से दो तो मैंने खाली थी और दो बच रही थी तो मैंने सोचा सायंकाल के समय खा ली जावेगी, वे ही पड़ी हैं। इस पर शाहजादी बोली कि हे प्रभो! अन्थड का फिक्र अभी से, ये दो रोटियाँ तो किसी गरीब भाई को दे देनी थी, सायंकाल तक जिन्दगी रही तो और रोटियां बनाकर खा ली जा सकती हैं यदि ऐसी संग्रहकारिताही मुझे पसन्द होती, तोकिसी शाहजादे के साथ में ही मैं मेरा नाता जोड़ती,

आपके पीछे क्यों लगती ? यह सुनकर युवक बहुत खुश हुआ।

मतलब इस सब लिखने का यह कि जैसी के साथ में वैसे का सम्बन्ध ही प्रशंसायोग्य होता है। मगर आज ऐसा सम्बन्ध कोई विरला ही होता होगा। आज तो यदि देखा जाता है या तो रूप सौन्दर्य या वित्तकोशवश इन दो के पीछे ही आज की जनता बंधी हुई है। इसीलिये आजकल का दाम्पत्य जीवन प्रेमोद्भावक न होकर प्राय: कलह का स्थान हो रहता है। स्वर्ग का सन्देश मिलने के बदले वहां पर नरक का दृश्य देखने को मिलता है।

संतोष ही सच्चा धन है

जिस चीजसे हमें आराम मिले, जिस किसी चीज की मदद से हम अपनी जीवन यात्रा के उस छोर तक आसानी से पहुँच सके उसे धन समझना चाहिये। इन दुनियाँ के लोगों ने कपड़ा-लत्ता, रुपया-पैसा आदि बाह्य चीजों में ही आराम समझा। अतः इन्हीं के जुटाने में अपनी प्रज्ञा का परिचय देना शुरु किया। कपड़े के लिये सबसे पहले लोगों ने अपने हाथों से अपने खेत में कपास पैदा की उसे पीन कर अपने हाथ के चरखे से सूत कात कर अपने हाथ से उसका कपड़ा बुन कर अपना तन ढकना शुरु किया। फिर जब और आगे बढ़े तो मिलों को जन्म दिया। जिनमें शुरु में मारकीन, फिर नयनसुख मलमल, अबरवा सरीखे बारीक से बारीक वस्त्र तैयार होने लगे। शुरू में लोग पैदल चलते थे और दूर जाना होता तो बैलगाड़ी या घोड़ा गाड़ी में बैठ कर चले जाते थे। मगर आज तो मोटर गाड़ी, रेल गाड़ी और हवाई जहाज तक चल पड़े।

जिससे घन्टे भर में हजारों मील चला जा सके। बल्कि चार छह पैण्ड भी चलना हो तो बाईसिकिल के आधार से चला जाता है। पैदल चलना एक प्रकार से अपराध सा समझा जाने लगा है। पैदल चलते समय पैरों में काँटे न गड़ पावें। इसलिये पहले काठ की खड़ाऊ पहन कर निर्वाह किया जाने लगा। फिर मुर्दा चमड़े के जूते बनने लगे परन्तु आज तो निर्दयता पूर्वक विचारे जिन्दा पशुओं का ही चमड़ा उधेड कर उसके जूते बनने लगे हैं। जिनको कि पहिन लेने के बाद वापिस खोलना असभ्य गवारू लोगों का काम है। जूता पहिने ही सो रहना चाहिये और जूता पहिने ही खाना भी खा लेना चाहिये। इसी में अपनी शान समझी जाने लगी है। गर्मी से बचने के लिये पहले तो दरख्तों की हवाली जाती थी फिर ताड़ या खजूर वगैरह के पत्तों के पंखे बना कर उनसे अपना काम निकाला जाने लगा। परन्तु अब तो बिजली के पंखोंका आविष्कार हो लिया है जिससे कि बटन दवाया और मनमानी हवा ले ली जावे। पीने के लिये पानी भी पहले तो तालाब या नदियों से लिया जाता था। फिर कुंवे: बावड़ियां बनने लगीं परन्तु अब तो हैण्डपम्प और नल आदि से मनमाना पानी मिलने लगा। मतलब यह कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिक से अधिक सुविधा प्राप्त करता जा रहा है। फिर भी किसी को शान्ति के दर्शन नहीं हो रहे हैं प्रत्युत विषमता होती जा रही है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य स्पर्धा की सड़कपर दौड़ लगाते हुये अपने आपको सबसे अगाड़ी देखना चाहता है। बस इसी चिन्ता में इसका सारा समय बीतता है! यहां पर हमें एक बात की याद आती है।

एक अच्छे करोड़पति सेठ थे। जिनकी कई दुकानें चलती थी, जिनकी उलझन में सेठजी खाना खाने को भी दौड़ते से आते थे तथा रात को सोने के लिये भी बारह बजे आते थे सो आते ही सो जाते थे । परन्तु स्वप्न में उन्हें व्यापार कारोबार की बातें ही सूझती थी। एक रोज सेठानी बोली हे पतिदेव ! आप इतने बड़े सेठ होकर भी आपके चित्त पर हर समय बड़ी व्यग्रता देखती हूँ। मेरे देखने में आपसे तो यह अपना पड़ोसी फूसिया ही सुखी मालूम पड़ता है जो समय पर मजदूरी करने जाता है और परिश्रम करके समय पर आ जाता है। सायंकाल के समय सितार पर दो घड़ी भगवान का भजन कर लेता है। सेठ ने कहा ठीक बात है ! एक काम कर ! यह कुछ रुपयों की थैली है सो जाकर उसके आंगण में गेर कर आजा। सेठानी ने ऐसा ही किया। सवेरा होते ही जब फूसिया ने अपने यहां थेली पड़ी देखी तो विचार किया मैं भगवान का भगत हूँ अतः भगवान ने खुश होकर मेरे लिये भेजी है। परन्तु जब उसके रुपये गिने गये तो एक कम सो थे। सोचा भगवान ने एक कम क्यों रहने दिया ? खैर कोई बात नहीं इसे पूरा कर लूंगा। अब वह उस रुपये को पूरा करने की फिकर में कुछ अधिक परिश्रम करने लगा। धीरे धीरे रुपया पूरा हुआ तो अब उनको रखने के लिये एक सन्दूक और एक ताला की भी जरूरत हुई। धीरे धीरे परिश्रम करके उनकी भी पूर्ति की। परन्तु अब वह संदूक उन रुपयों से भरी नहीं, कुछ खाली रह गई तो फिर उसे भर लेने की फिकर रही इसी उधेड़बुन औरपरिश्रममें पड़कर उसनेवह सितार बजाना छोड़ दिया। बस यही हाल आजकी सारी जनता का हो रहा

है। एक घटे एक वटे वह पूरा हो जावे, कहीं से विना कमाया पैसा आ जावे और मैं धनवान वन जाऊं। इसी दोड़धूप में सभी तरह की समुचित साधन सामग्री होने पर भी विना सन्तोप भाव के सुख कहां से हो सकता है? सुख का मुख्य साधन तो सन्तोष है अतः वही वास्तविक धन है। उसके सामने और सब धन वेकार है जैसा कहा है कि:—

गो धन गजधन वाजि धन, कंचन और मकान।
जब आवे सन्तोप धन सब धन धूलि समान ॥१॥

भगवान महावीर स्वामी के समय में उनका भक्त एक गृहस्थ हो गया हैं। जिसकी कि धर्मपत्नी भी उसीके समान स्वभाव वाली थी दोनों आदमी मेहनत मजदूरी कर पेट पालते थे। उस गृहस्थ का नियम था कि मैं मेरे पास वारह आनों से अधिक नहीं रखूंगा। इसलिये लोग उसे पूणिया श्रावक कहते थे। एक रोज दोनों स्त्री पुरुप सुबह की सामायिक करने को बैठे थे। इधर आकाश मार्ग से होकर देवता लोग भगवान की वन्दना के लिये जा रहे थे। सो उनके ऊपर आकर उन देवताओं का विमान अटक गया। देवों ने सोचा ये दोनों भगवान के भक्त होकर भी इतने गरीव हैं। हम लोगों को इनकी कुछ सहायता करनी चाहिये। अतः उनके तवा, वेलन, चकलादि को सोना वनाकर आगे को रवाना हुये। इधर सामायिक समय पूर्ण होने पर पूणिवा की स्त्री बोली, हे प्रभो! आज यह क्या वात हुई? मेरे चकला वेलन कहां गये? और उनकी एवज में ये चकला वेलन आदि कौन किसके यहाँ रख गया। हे भगवान! मैं

अब रोटियां बनाऊं तो कैसे क्या बनाऊं ? इनके हाथ भी कैसे लगाऊं ? इतने में देव लोग वापिस लौट कर आये और बोले कि आप लोगों की धर्म भावना से प्रसन्न होकर यह ऐसा तो हम लोगों ने किया है। हम लोगों की तरफ से आपको यह सब भेंट है, आप ले लेवें। पूणियां की स्त्री ने कहा प्रभो ! हमारे ये किस काम के। हमारे लिये तो वे सब ही भले जो कि मिट्टी और पत्थर के थे। इन सबका हम क्या करें। इन सबके पीछे तो हम लोग बन्ध जावेंगे, इनको कहां रखेंगे ? हमें यह सब नहीं चाहिये, आप अपने वापिस लीजिये, हमें तो अपने वे ही देने की कृपा कीजिये। इस पर आनन्दित होकर देवता लोग बोले ओह ! कितना बड़ा त्याग है और जय जयकार पूर्वक उन पर फूल बर्षाये।

गरीब कौन है ?

जिसके पास कुछ नहीं है वह। ऐसा कहना भूल से खाली नहीं है। जिसके पास भले ही कुछ न हो परन्तु उसे किसी बात की चाह भी न हो तो वह गरीब नहीं, वह तो अटूट धन का धनी है। गरीब तो वही है जिसके पास में अपने निर्वाह से भी अधिक सामग्री मोजूद है फिर भी उसकी चाह पूरी नहीं हुई है। जिसके पास खाने को कुछ भी नहीं है और उसने खाया भी नहीं मगर भूख बिल्कुल नहीं है तो क्या उसे भूखा कहा जावे ? नहीं। हां जिसने दो लड्डू तो खा लिये हैं और चार लड्डू उसकी पत्तल में धरे हैं जिनको कि वह खाने लग रहा है किन्तु फिर भी कह रहा है मुझे और चाहिये, इतनी ही से मुझे क्या होगा ? क्या इनसे मेरा

पेट भर सकता है ? तो कहना होगा वही भूखा है।

एक समय किसी वृक्ष के नीचे एक परमहंस महात्मा बैठेहुए थे। उनके पास होकर एक भोला गृहस्थ निकला तो—अहो ! यह बड़ा गरीब है, इसके पास तन पर कपड़ा नहीं, खाने को एक समय का खाना नहीं। ऐसा सोच कर कहने लगा स्वामिन् ! ये दो लड्डू है, लीजिये खा लीजिये। यह धोती है इसे पहर लीजिये और यह चार पैसे आपके हाथ खर्च के लिये देता हूं सो भी लीजिये एवं आराम से रहिये। साधुजी बोले भाई ! लड्डू किसी भूखे को, धोती किसी नंगे को और पैसे किसी गरीब को दे दो। यह सुन कर आश्चर्य पूर्वक गृहस्थ बोला प्रभो ! आपके सिवा दूसरा ऐसा कौन मिलेगा ? तब फिर साधु जी बोले भाई ! मैं तो भगवान का भजन कर रहा हूं जिससे मेरा पेट भरा रहता है। कुदरत ने मुझे बहुत लम्बी आसमान की चादर दे रखी है और चलने फिरने के लिये मेरे पैर हैं, अब मुझे और किसी चीज की जरूर नहीं है। यदि तुझे देना ही है तो मेरे पास बैठजा मैं बताऊंगा उसे दे देना।

थोड़ी देर में मोटर में बैठा हुआ एक महाशय आया जिसे देख कर साधु ने उस गृहस्थ को इसारा किया कि इसको दे दो। गृहस्थ-मैं मेरी ये चिजें किसी गरीब को दे देना चाहता था। स्वामी जी ने कहा, यह मोटर में बैठा जा रहा है सो गरीब है इसे दे दो। इसलिये आपको दे रहा हूँ। ऐसा कह कर उसकी गोद में रखने लगा तो वह चौक उठा और नीचे उतर कर साधु जी के पास आ; नमस्कार पूर्वक बोला—स्वामिन् ! आपने मुझे गरीब कैसे समझा ? देखिये मेरे पास यह एक ही मोटर नहीं और भी कई मोटरें हैं।

घोड़ा गाड़ी टिम टिम भी है। दश खत्तियां अनाज की भर कर रखता हूँ जो कि फसल पर भरली जाती हैं और फिर तेजी होने पर बेच कर खलास करली जाती हैं। एक सराफे की दुकान चलती है जिसमें पाकिस्तान से ले आया हुआ सोना खरीद कर रखा जाता है और वह दो रुपये तोला सस्ते में अपने ग्राहकों को दिया जाता है ताकि दुकान खूब चलती है। लोग समझते हैं कि पाकिस्तान का सोना खरीदना और बेचना बुरी बात है। परन्तु मैं तो जानता हूं कि इसमें कौनसी बुराई है गैर देश का माल अपने देश में आता है एवं यहां के लोगों को सस्ते में मिल जाता है अच्छी बात होती है। अगर कोई सरकारी निरीक्षक आया तो उसकी जेब गरम कर दी जाती है, काम बेखटके चलता है। एक कपड़े की दुकान है जिसमें खादी वगैरह मोटा कपड़ा न बेचा जाकर फैसनी बारीक कपड़ा ही बेचा जाता है ताकि मुनाफा अच्छा बैठता है। अब एक कपड़े की मिल खोलना चाहता हूं जिसमें दो करोड़ रुपये लगेंगे। सो एक करोड़ रुपये तो मेरे दानेश्वरसिंह की तरफ हैं। यद्यपि वह इस समय देना नहीं चाह रहा है। परन्तु मेरा भी नाम शोषणसिंह है। उसने महाविद्यालय, अनाथालय आदि संस्थायें खोल रखी हैं जोकि उसके नाम से चलती हैं। मैं कचहरी जाता हूँ नालिस करके उनकी संस्थाओं की ईमारत को कुड़क करवा कर वसूल कर लूंगा। बाकी एक करोड़ रुपयों के सेयर बेच कर लिये जावेंगे। इस पर साधुजी ने कहा कि इसी लिये मैं तुमको गरीब बतला रहा हूँ। तुम्हें पैसा प्राप्त करने की बहुत ज्यादा जरूरत है ताकि किसी सज्जन के द्वारा स्थापित की हुई प्रमार्थिक संस्थाओं को नष्ट-भ्रष्ट करके भी अपनी

हवस पूरी करना चाहते हो, एवं अन्नादि का अनुचित संग्रह करके भी पैसा बटोरने की धुन रखते हों।

परिग्रह ही सब पापों का मूल है।

मनुष्य अपने पतनशील शरीर को स्थायी बनाये रखने के लिये इसे हृष्ट पुष्ट कर रखना चाहता है। अतः जिन चीजों को इस शरीर के पोषण के लिये साधन स्वरूप समझता उन्हें अधिक से अधिक मात्रा में संग्रह कर रखने का और जिनको उसके बाधक समझता है उन्हें दूर हटाने के लिये ऐडी से चोटी तक का पसीना बहा देने में संलग्न हो रहने का अथक प्रयत्न करता है। इसी दुरुभाव का नाम ही परिग्रह है। अर्थात् इस शरीर के साथ मोह और शरीर की सहायक सामग्री के साथ ममत्व होने का नाम परिग्रह है। जिसके कि वश में हुआ यह शरीरधारी सब कुछ करता है। व्यभिचार में फंसता है, चोरी करता है, झूठ बोलता है और अपने पराये को कष्ट देने में प्रवृत हो रहता है।

पुरातनकाल में लोग अपने जीवन निर्वाह के योग्य वस्तुओं को अपने शारीरिक परिश्रम से सम्पादित करते थे, उन्हीं से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते थे। एक आदमी एक काम करता तो दूसरा आदमी किसी दूसरे काम में दिलचस्पी लेता था। इस प्रकार अपनी आवश्यक चीजों को अपने वर्ग से प्राप्त करते रह कर परस्पर प्रेम और सन्तोष पूर्वक एक परिवार का सा जीवन बिताया जाया करता था। जिसमें स्वार्थपूर्ति के साथ २ परमार्थ की भावना भी जीवित रहती थी। यदि कहीं विभिन्न वर्ग के व्यक्ति से भी

कोई चीज लेनी होती थी तो चीज के बदले चीज देकर ली जाती थी। जैसे एक जूतों की जोड़ी का मूल्य पांच सेर अनाज, एक गेहूं की बोरी का मूल्य दो बकरियां, एक चादर का दाम एक भेड़ किंतु आवश्यकता प्रधान थी, विनिमय गौण। धीरे धीरे विनिमय के लाभ को पहचान कर अधिक उत्पादन का प्रयत्न होने लगा। विनिमय आगे बढ़ा, नाना परिवारों की भांति गावों, शहरों और प्रान्तों देशों में परस्पर व्यवसाय होने लगा। एवं फिर उत्पादन का ध्येय ही व्यवसाय हो गया। उसमें सहूलियत पाने के लिये मुद्राओं को जन्म दिया गया। हर प्रकार के व्यवसाय का मूल सूत्र अब मुद्रा बन गई। सुगमता यहां तक बढ़ी कि जेब में एक पैसा भी न होकर लाखों करोड़ों का व्यापार सिर्फ जबान पर होने लगा।

मनुष्य ने जिसे एक साधन के रूप में स्वीकार किया था वही साध्य होकर आज उसके सिर पर चढ बैठा है। जिसके पास पैसा वही दर्शनीय जैसा, बाकी तो कोई वैसा न ऐसा, जैसी बातें कही जाने लगी हैं। प्रायः सभी के दिल में यही समाई हुई है कि उचित या अनुचित किसी भी मार्ग से पैसा प्राप्त किया जावे।

सोचने का विषय यह कि वह अर्थ है क्या चीज जिसको मनुष्य ने इतना महत्व दे रखा है? वह है मनुष्य की अपनी कल्पना का विषय। इसके सिवाय और कुछ भी नहीं। मनुष्य ने पहले सोने को मान्यता दी तो उसके सिक्के बने, फिर चान्दी के उसके बाद चमड़े के किन्तु अब कागज का नम्बर आ गया है। यदि मनुष्य अपने विचारों में लोहे को उतना महत्व देने लगे जितना कि वह सोने को दे रहा है तो लोहा सोना बन जावे और सोने को मिट्टी

जितना महत्व दें तो सोना मिट्टी के बराबर हो जा सकता है। खैर।

आज का मानव केवल पैसेका उपासक बना हुआ है। मानता है कि पैसे से ही सब काम चलता है अतः किसी भी उपाय से पैसा प्राप्त किया जावे। वह भी इतना हो तो बहुत ठीक जिससे कि मैं सब से अधिक पैसे वाला कहलाऊं बस इसी विचार से अनेकों की आजीविका के ऊपर कुठाराघात करके भीं अपने आपकाही खजाना भरना चाहता है। आज अनेक मिल और फैक्ट्रियां खुलती हैं। उनमें क्या होता है? लाखों आदमियों का काम एक मशीन से ले लिया जाता है। उसकी आय एक श्रीमान के यहां आकर जमा हो जाती है। हां उनमें हजार पाँचसौ आदमी जरूर काम पर लगते हैं। वह भी जहां लाखों का पेट भर सकता था वहां सिर्फ इने गिने आदमियों की पेटपूर्तिका कारण हो रहता है एवं उन काम करने वालों का भी स्वास्थ्य उस मशीन के अथक परिश्रम से खराब हो रहता है। परन्तु जो लोग आप उससे धन कमा कर इकट्ठा करना चाहते हैं उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं। इसी लिये तो आज बेकारी बढ़ती चली जा रही है। जो विधवा बहिने कपास की चरखियां चला कर, चरखे के द्वारा सूत कात कर अपना पेट पालती थी या किसी श्रीमान का पीसना पीस कर अपनी भूख मिटाती थी। वे सबआज बिना धन्धे के भूखों मर रही हैं।

कोई सेठ साहूकार किसी को नोकर भी रखता है तो इसीलिये कि इसके द्वारा मेरा कारोबार चलेगा, जो इसको तनखा दूंगा मुझे इसके द्वारा अधिक आमदनी होगी। नोकर भी यही सोचता है कि चलो ये मुझे जो नोकरी देते हैं मैं अभी किसी भी दूसरे रास्ते से इतनी प्राप्ति नहीं कर सकता हूँ। इसलिये अभी तो यहीं रहना

चाहिये और किसी दूसरे काम की निगाह करते रहना चाहिये जहां कोई इससे भी अधिक प्राप्ति का मार्ग हाथ आया की इसको छोड़ दूंगा। 'गुरु चेला लालची दोनों खेलें दाव' वाली कहावत चलती है। स्वामी और सेवकपन का आदर्श बिल्कुल लुप्त हो गया है, सिर्फ पैसे से यारी है। जिधर देखो उधर यही हाल है। अपनी धन संग्रह की भावना को पोपण देते हुये पर-परिशोपण ही जगाया जा रहा है। पैसे के द्वारा जो चाहे सो कर लिया जाता है और अपनी शान बताई जाती है। इतर सब बातें तो रहने दीजिये आज तो शासन सत्ता भी पैसे के आधार पर ही चलती देखी जा रही है। जब मतदान का अवसर आया और आपके पास नोट हों उनको बखेर दीजिये और अपने पक्ष में वोट ले लीजिये। फिर क्या? सत्ताधीश हो रहिये एवं फिर जो नोट आपने फैंके थे उससे कई गुणे नोट थोड़े ही दिनों में बटोर लीजिये। हाय भारत माता! तेरी सन्तान की आज क्या दशा हो गई है। जहां राजा और प्रजा में पिता पुत्रवत् सौहार्द भाव था वहां आज यह दशा देखने को मिल रही है, इस पैसे के प्रलोभन में आकर। राज्य शासक प्रजा के सर्वस्व हड़प जाना चाहते हैं तो प्रजा राज्य को नष्ट कर देने के लिये कमर कस रही है। आजसे करीब बाईस सौ वर्ष पूर्व ईरान से आकर सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया था तो पौरप राजा से उसकी मुठभेड़ हुई। यद्यपि विजय सिकन्दर के हाथ लगी फिर भी पौरप की वीरता को देख कर सिकन्दर को बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों एक जगह बैठ कर परस्पर बातें कर रहे थे। इतने ही में दो आदमी और आये जो बोले कि आप दोनों महानुभाव विराज रहे हो. हम

दोनों का एक झगड़ा मिटा दीजिये। उन आगन्तुकों में से एक ने कहा कि मैंने इनसे कुछ जमीन मोल ली थी। उसे खोदते हुए वहां पर कुछ स्वर्ण निकला है, मैंने इससे कहा यह सब स्वर्ण तो आपका है आप लीजिये, मैंने तो सिर्फ आपसे जमीन खरीदी है ना कि यह स्वर्ण। इस पर यह कहते हैं कि वाह! जब मैंने तुम्हें जमीन दी तो फिर यह स्वर्ण जोकि उस जमीन में से निकला है उससे पृथक थोड़े ही रह गया। यह सुन कर सिकन्दर से पौरुष बोला कि इसका इन्साफ आप करें! किन्तु सिकन्दर ने कहा—नहीं! यह सब प्रजा आपकी है। यह प्रान्त भी आपका है। आप ही यहां के राजा हैं। मैंने सिर्फ आपको अपने दो हाथ दिखाये हैं। मेरा यहां कुछ नहीं है, सो सब आपका है। इसलिये आपही इसका निबटारा कीजिये।

क्षण भर विश्राम लेकर पौरुष ने उस प्रार्थना करने वाले से कहा कि भाई आपके कोई सन्तान नहीं है? तो जवाब मिला कि मेरे एक लड़की है और इनके एक लड़का। पौरुष ने कहा कि उन दोनों का आपस में विवाह करदो और यह सोना उनको दहेज के रूप में दे दो। इससे वे दोनों तो बड़े खुश हुए किन्तु सिकन्दर ने कहा आपने यह क्या किया? यह सब माल तो सरकार के योग्य था पौरुष ने कहा अब भी तो वह सरकार का ही तो है बल्कि जो भी प्रजा के पास में धन माल है वह सरकार का ही है। प्रजा भी सारी सरकार की ही है। सरकार उससे जब जो चाहे ले सकती है। मेरी समझ में प्रजा उसके देने में कुछ आगा पीछा नहीं सोचेगी। सिकन्दर को इस पर विश्वास नहीं हुआ वह बोला कि मैं उसको देखना चाहता हूं। पौरुष ने डोण्डी पिटवादी कि सरकार को जरूरत

है जिसके पास जितना सोना हो यहाँ लाकर रख देवे। श्याम तक अपने २ नाम की चिट लगाकर जिसके पास जो सोना था वहाँ लाकर डाला गया। बहुत बड़ा ढ़ेर लग गया। सवेरा होते ही जो सोने क पर्वतसरीखा ढेर और राजा तथा प्रजा में इस प्रकार का उदारता पूर्ण व्यवहार देखकर सिकन्दर अचम्भे में आ गया और बोला कि धन्यवाद है आपको आपकी प्रजा को। मैंने ऐसे सन्तोष-पूर्ण लोगों को कष्ट दिया इसका मुझे पूर्ण पश्चाताप है।

लोगों को यह कह दिया गया कि अभी कोई जरूरत नहीं है अतः अपना २ सोना वापिस ले जाओ तो सबने ठीक अपने अपने नाम का सोना बड़ी शान्ति के साथ ले लिया विचार का विषय है कि उस समय की बात और आज की बात में कितना अन्तर है, कहां वह प्रकाशमय दिन था जोकि लोगों को सन्मार्ग पर स्थिर किये हुवे था और कहाँ आज अन्धकारपूर्ण रात्रि है जिसमें कि लोग दिग्भ्रान्त होकर इधर उधर टक्कर खा रहे हैं।

न्यायोपात्तधन

उपर बताया गया है कि परिग्रह अनर्थ का मूल है और धन है वह परिग्रह है। अतःवह त्याज्य है परन्तु याद रहे कि इसमें अप-वाद है क्योंकि पारिवारिक जीवन बिताने वाले गृहस्थों को अभी रहने दिया जांय, उनका तो निर्वाह बिना धन के हो ही नहीं सकता परन्तु मैं तो कहता हूं कि परिवार से दूर रहने वाले त्यागी तपस्वियों के लिये भी किसी न किसी रूप में वह अपेक्षित ठहरता है क्योंकि उनको भी तब तक यह शरीर है इसे टिका रखने के लिये

भोजन तो ले लेना पड़ता ही है जो कि धन के आधार पर निर्धारित है। यह बात दूसरी कि उनका देशकाल उन्हें स्वयं धनोपार्जन करने को नहीं कहता है। उन्हें तो गृहस्थ अपने परिश्रम से उपार्जन किये हुवे धन के द्वारा सम्पादित अन्न में से श्रद्धापूर्वक जो जितना कुछ दे उसी पर निर्वाह करना होता है। परन्तु गृहस्थ जीवन उससे विपरीत होता है उसे उनके अपने परिवार के एवं अपने आपके भी निर्वाह को ध्यान में रखकर चलना पड़ता है। अतः उसके लिये धन को आवश्यक मानकर न्यायपूर्वक कमाई करने की आज्ञा है। न्यायवृति का सीधा सा अर्थ होता है उचित रीति से शारीरिक परिश्रम करना। उससे जो भी लाभ हो उसमें से कुछ एक भाग बाल वृद्ध रोगी त्यागी और प्राघूर्णिक की सेवा करके शेष बचे हुए से अपना निर्वाह करना एवं आय से अधिक व्यय कभी नहीं करना।

धन्यकुमार चरित में किसान हल जोतकर अपने विश्राम स्थल पर आता है और उसकी घर वाली जब उसके लिये भोजन लाकर देती है तो धन्यकुमार को भी खाने के लिये कहता है कि आइये! कुमार भोजन कीजिए। जवाब मिलता है कि आप ही खाइये, मैं तो मेहनत किये बिना नहीं खा सकता। आप यदि मुझे खिलाना ही चाहते हैं तो मुझसे अपना कुछ काम ले लीजिये। इस पर लाचार होकर किसान को धन्यकुमार से हल जोतने का काम लेना पड़ा। क्योंकि उसे खिलाये बिना वह भी खा नहीं सकता था और धन्यकुमार उसका काम किये बगैर कैसे खाये। अतः धन्यकुमार ने प्रसन्नतापूर्वक हल जोतने का कार्य किया। मतलब यह कि न्याय-

न्याय वृत्ति वाला मनुष्य किसी से माँगना तो दूर रहा वह तो किसी का दिया हुआ भी लेना ठीक नहीं समझता। वह तो अपने आप पर भरोसा रखता है। इसी धन्यकुमार की स्त्री सुभद्रा जब इसे ढूंढ़ने के लिये अपने सास सुसर के साथ निकलती है और मार्ग में लुटेरों से पाला पड़ जाता है लुट जाते हैं तो फिर जाकर जहां तालाब खुद रहा था वहां पर मिट्टी खोदकर डालने के काम में लगते हैं। मालिक आकर देखता है तो कहता है कि ये लोग इतना परिश्रम क्यों कर रहे हैं। मिट्टी खोद कर क्यों फेंक रहे हैं। ये सब लोग तो हमारे अतिथि हैं मेरे घर पर चलें और आराम से रहें। ऐसा भी न करें तो भी कम से कम इतना तो अवश्य करें कि जिन जिन चीजों की आवश्यकता हो मेरे यहां से मंगा लेवें। इस पर सुभद्रा ने कहा कि मिट्टी खोदकर डालना तो हमारा कर्त्तव्य है, श्रमकर खाना यह तो मनुष्य की मनुष्यता है किन्तु किसी के यहां से यों ही ले आना यह तो गृहस्थ जीवन का कलंक है, घोर अपराध है। हम लोग ऐसा कैसे कर सकते हैं।

दूसरे की कमाई खाना गृहस्थ के लिये कलंक है।

यह बात है भी ठिक क्योंकि कमाई करने के योग्य होकर भी जो दूसरे की ही कमाई खाता है वह औरों को भी ऐसा ही करने का पाठ सिखाता है। एवं जब और सब लोग भी ऐसा ही करने लग जावें तो फिर कमाने वाला कौन रहे। ऐसी हालत में फिर सभी भूखे मरें निर्वाह कैसे हो। इसीलिए न्यायवृत्ति वाला महानुभाव औरों की कमाई की तो बात ही क्या? खुद अपने पिता की कमाई

पर भी निर्भर होकर रहना अपने लिये कलंक की बात मानता है। जैसा कि उत्तम स्वार्जितं वित्तं मध्यमं पितुरर्जितं।

अधमं भ्रातृ वित्तंस्या स्त्रीवित्तं चाधमाधमं ॥१॥

इस प्रसिद्ध नीति वाक्य से स्पष्ट होता है और इस विषय में उदाहरण हमारे पुरातन साहित्य में बहुतायत से मिलते हैं। एक शाहजहाँ नाम का मुसलमान बादशाह हो गया है। उसकी बेगम नूरजहां अपने हाथों खाना बनाया करती थी। एक रोज रोटियाँ बनाते समय उसके हाथ जल गये। फिर भी वह उसी प्रकार रोज खाना बनाती रही किन्तु एक दिन उसके हाथों में पीड़ा अधिक बढ़ गई जिससे रोटी बनाने में वह बहुत कष्ट अनुभव करने लगी बादशाह जब खाना खाने के लिये आया तो वह रो पड़ी: बादशाह ने पूछा क्या बात है? रोती क्यों हो? बेगम बोली आप ही देख रहे हो मेरे हाथों में पीड़ा बहुत है जिससे रोटिया बनाने में अड़चन पड़ती है। कम से कम जब तक मेरे हाथ ठीक न हो पाये तब तक एक बान्दी का प्रबन्ध कर दो ताकि वह खाना बना दिया करे। जवाब मिला कि बात तो ठीक है परन्तु अगर बान्दी रखी जाय तो उसे उसका वेतन कहाँ से कैसे दिया जावे? बेगम ने आश्चर्यसे कहा बादशाह सलामत यह आप क्या कहरहे हैं जबकि आपके अधिकार में दिल्ली की बादशाहत है फिर भला आपके पास पैसों की क्या कमी है? खजाने भरे पड़े हैं। बादशाह बोला कि खजाने में जो पैसा है वह तो पिता की दी हुई धरोहर है जोकि प्रजा के उपयोग की चीज है, उस पर मेरा जाति अधिकार क्या हो सकता है? मैं तो एक रूमाल रोजमर्रा तैयारकर लेता हूं उसकी आय से मेरा और तुम्हारा गुजर बसर होता है वही मेरी सम्पत्ति है।

न्यायोचित वृत्ति

सब से पहिला तो यह है कि जमीन में हल जोत कर अन्न पैदा किया जाय, वह इसी विचार से कि मैंने जिसका अन्न कर्ज लेकर खाया है वह व्याज वाढी सूधा चुका दिया जावे एवं वाल वच्चों सहित मेरा उदर पोपण हो जावे और द्वार पर आये हुये अतिथि का स्वागत भी हो जावे। हां कहीं—मैं खेती तो करता हूं परन्तु इसमें उत्पन्न हो गया हुआ अन्न तो अधिकांश उसी के यहां चला जावेगा जिसके यहां का अन्न मैंने पहले से लेकर खा रखा है। ठीक तो वह मर जावे ताकि मुझे उसे न देना पड़े और सारा अन्न मेरे ही पास में रह जावे जिससे कि मैं अन्नाधिपति वन कर भूतल पर प्रतिष्ठा पाऊं. इस तरह का विचार आ गया तो वह खेती करना अन्याय पूर्ण हो जाता है।

खेती दुनियां के लोगों की परमावश्यक वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली है। अतएव खेती करना अपना कर्तव्य समझ कर उसे तरक्की देना, अच्छी से अच्छी खेती हो, ज्यादा से ज्यादा अन्न और भूषा पैदा हो इसकी कोशिश करना, उसे हर तरह की विघ्न वाधाओं से वचाये रखने की चेष्टा करना यह तो एक भले किसान का कर्तव्य होता है। मगर मेरी खेती को चर जाने वाले ये वन्दर, हिरण वगैरह पैदा ही क्यों हुये। ये अगर नष्ट हो जावें, दुनियां में इनकी सत्ता ही न रहे तो अच्छा हो। इस प्रकार की संकीर्ण भावना रखना सो कृपकता का दूषण है। क्योंकि दुनियां तो प्राणियों के समूह का नाम है जिसमें सभी प्राणी अपना अपना हक रखते हैं।

अपनी २ जगह सभी सार्थक हैं फिर भला यह कौनसी समझदारी है कि मनुष्य अपने स्वार्थ के वश होकर औरों का सत्यानाश चाहे। मनुष्य को तो चाहिये कि अपने कर्तव्य का पालन करे, होगा तो वही जोकि प्रकृति को मंजूर है। यहां पर हमें एक बात का स्मरण हो आता है जो कि आचार्य श्री शान्ति सागर महाराज के गृहस्थ जीवन की है।

श्री शान्तिसागर महाराज का जन्म पटेल घराने में हुआ था। जिसका परम्परागत धन्धा खेती करना था। उनके पिता ने उन्हें खेती की रखवाली करने पर नियत किया। अतः पिता की आज्ञा से आप रोज खेत पर जाया करते थे। एक दिन एक बिजार आया और उनके खेत में चरने लगा। कुछ देर में उन्होंने उसे निकाल कर दूर हटा दिया मगर वह थोड़ी देर बाद फिर उन्हीं के खेत में चरने लगा। एवं वह अभ्यासानुसार रोज वहीं आकर चरने लगा। कुछ दिन बाद उनके पिता खेत पर आये और देखा तो बिजार चर रहा है खेत में! देख कर पिता बोले भैया तुम क्या रुखाली करते हो। देखो! बिजार खेत को बिगाड़ रहा है। जबाब मिला कि पिताजी! मैं क्या करूं? मैं तो इसे बहुत निकालता हूं मगर यह बार बार यहीं पर आ जाता है। क्या बात है? दुनिया में धन सीर का है इसके हिस्से का यह भी खा जावेगा, अपना है सो रह जावेगा। पिता ने अपने मन में कहा बड़ा अजीब लड़का है। खैर, सुना जाता है कि वहां और सालों से भी अधिक अन्न उत्पन्न हुआ। ठीक है नेक नीयत का फल सदा अच्छा ही होता है। मगर कच्चे दूध से पोषण पाये हुये इस मानव को विश्वास भी तो हो। यह तो समझता है कि

मेरी मेहनत से जो कुछ भी कमाता हूँ वह सब मेरा है। उसमें दूसरे का क्या हक है? मैं किसी दूसरे के धन को हड़प जाऊं यही बहुत है। परन्तु मेरे धन में से एक दाना भी कैसे खा जा सकता है? बस इस खुदगर्जी की वजह से ही यह अपने कार्यों में पूर्णरूप से सफल नहीं हो पाता है। प्रत्युत कभी २ तो इसको लाभ के स्थान पर नुकसान भुगतना पड़ता है।

महाराजा रामसिंह

महाराजा रामसिंह जयपुर स्टेट के एक प्रसिद्ध भूपाल हो गये हैं। जोकि एक बार घोड़े पर बैठ कर अकेले ही घूमने को निकल पड़े। घूमते घूमते बहुत दूर जंगल में पहुंच गये तो दोपहर की गर्मी से उन्हें प्यास लग आई। एक कुटिया के समीप पहुँचे जिसमें एक बुढ़िया अपनी टूटी सी चारपाई पर लेटी हुई थी। बुढ़िया ने जब उन्हें अपने द्वार पर आया हुआ देखा तो वह उनके स्वागत के लिये उठ बैठी और उन्हें आदर के साथ चारपाई पर बैठाया। राजा बोले कि माता जी मुझे बड़ी जोर से प्यास लग रही है। अतः थोड़ा पानी हो तो पिलाइये। बुढ़िया ने अतिथि सत्कार को दृष्टि में रखते हुए उन्हें निरा पानी पिलाना उचित न समझा। इसलिये अपनी कुटिया के पीछे होने वाले अनार के पेड़ पर से दो अनार तोड़ कर लाई और उन्हें निचोड़ कर रस निकाला तो एक डबल गिलास भर गया जिसे पीकर राजा साहेब तृप्त हो गये। कुछ देर बाद उन्होंने बुढ़िया से पूछा—तुम इस जंगल में क्यों रहती हो तथा तुम्हारे कुटुम्ब में और कौन है? जबाव मिला कि यहां जंगल

में भगवान भजन अच्छी तरह से हो जाता है। मैं हूँ और मेरे एक लड़का है जो कि जलाने के लिये जंगल में से सूखी लकड़ियां काट लाने को गया हुआ है। यह जमीन जो मेरे पास बहुत दिनों से है पहले ऊपर थी अतः सरकार से दो आने बीघे पर मुझे मिल गई थी। जिसको भगवान के भरोसे पर परिश्रम करके हमने उपजाऊ बनाली है। अब इसमें खेती कर लेते हैं जिससे हम दो मां बेटों का गुजर बसर हो जाता है एवं आए हुए आप सरीखे पाहुणे का अतिथि सत्कार बन जाता है। यह सुन राजा का मन बदल गया। सोचने लगे ऐसी उपजाऊ जमीन और दो आने बीघे पर छोड़ दी जावे? बस फिर क्या था उठ कर चल दिये और जाकर दो रुपये बीघे का परवाना लिख कर भेज दिया। अब थोड़े ही दिनों में अनार के जो पेड़ उस खेत में लगाये हुये थे वे सब सूखे से हो गये और वहां पर अब खेती की उपज भी बहुत थोड़ी होने लगी। बुढ़िया बेचारी क्या करे लाचार थी। कुछ दिन बाद महाराज रामसिंह फिर उसी प्रकार घोड़े पर सवार होकर उधर से आ निकले। बुढ़िया की कुटिया के पास आ ठहरे तो बुढ़िया उनका सत्कार करने के लिये पेड़ पर से अनार तोड़ कर लाई परन्तु उन्हें विदार कर देखा तो बिल्कुल शुष्क, काने कीड़ोंदार थे। अतः उन्हें फैंक कर और जरा अच्छे से फल तोड़ कर लाई तो उनमें से भी कितने ही तो सड़े गले निकल गये। तीन चार फल जरा ठीक थे उन्हें निचोड़ा तो मुश्किल से आधा गिलास रस निकल पाया। यह देखकर महाराज रामसिंह झट बोल उठे कि माता जी! दो तीन वर्ष पहिले जब मैं यहां आया था तो तुम्हारे अनार बहुत

अच्छे थे। दो अनारों में से ही भरा गिलास रस का निकल आया था। अबकी बार यह क्या हो गया? बुढ़िया ने जवाब दिया कि इस बार जी क्या कहूँ निगोड़े राजाकी नीयत में फर्क आ गया उसी का यह परिणाम है। उसे क्या पता था कि जिससे मैं बात कर रही हूँ वह राजा ही तो है। वह तो उन्हें एक साधारण घुड़सवार समझकर सरल भाव से ऐसा कह गई। राजा समझ गये कि बुढ़िया ने अपने परिश्रम से जिस जमीन को उपजाऊ बनाया था उस पर तुमने अपने स्वार्थवश हो अनुचित कर थोप दिया यह बहुत बुरा किया।

बन्धुओ जहां सिर्फ जमीनदार की बुरी नीयत का यह परिणाम हुआ वहां आज जमीनदार और काश्तकार दोनों ही प्रायः स्वार्थवश हो रहे हैं। ऐसी हालत में जमीन यदि अन्न उत्पन्न करने से मुंह मोड़ रही है इसमें आश्चर्य ही क्या है? हम देख रहे हैं कि हमारे बाल्यजीवन में जिस जमीन में पच्चीस-तीस मन बीघे का अन्न पैदा हुआ करता था वही आज प्रयत्न करने पर भी पांच छः मन बीघे से अधिक नहीं हो पाता है। जिस पर भी आये दिन कोई न कोई उपद्रव आता हुआ सुना जाता है। कहीं पर टिड्डियां आकर खेत को खा गई तो कहीं पानी की बाढ़ आ गई या पाला पड़ कर फसल नष्ट हो गई इत्यादि यह सब हम लोगों की ही दुर्भावनाओं का ही फल है। यदि हम अपने स्वार्थ को गौण करके सिर्फ कर्तव्य समझकर परिश्रम करते रहे तो ऐसा कभी नहीं हो सकता।

हमारी आंखों देखी बात

एक बहिन जी थी जिसके विचार बड़े उदार थे। उसके यहां खेती का धन्धा होता था। सभी आवश्यक चीजें प्रायः खेती से प्राप्त हो जाया करती थी। अतः प्रथम तो किसी से कोई चीज लेने की वहां जरूरत ही नहीं होती थी। फिर भी कोई चीज किसी से लेनी हो तो बदले में उससे भी अधिक परिमाण की कोई दूसरी चीज अपने यहां की उसे दिये बिना नहीं लेती थी। वह सोचती थी कि मेरे यहां की चीज मुझे जिस तरह से प्यारी है उसी प्रकार दूसरे को उसकी अपनी चीज मुझसे भी कहीं अधिक प्यारी लगती है। हाँ जब कोई भी भाई आकर उसके पास से मांगता था कि बहिन जी क्या आपके पास गेहुं है? यदि हो तो दो रु० की मुझे दे दीजिए। इस पर वह बड़ी प्रसन्नता के साथ गेहूँ उसे दे देती मगर रुपये नहीं लेती थी! कहती थी कि भाई जी रुपये देने की क्या जरूरत है ये गेहूँ आपके और आपकी बहिन। आज आप मुझसे ले जाते हैं तो कभी यदि मुझे जरूरत हुई तो मैं आपसे ले आ सकती हूं। मैं रुपये तो आपसे नहीं लूंगी आप गेहूँ ले जाइये और अपना काम निकालिये। आप मुझे रुपये दे रही हैं इसका तो मतलब यह कि अपना आपस का भाईचारा ही आज से समाप्त करना चाहते हैं मैं इसको अच्छी बात नहीं समझती इत्यादि रूप से वह सभी के साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार रखती थी अब एक बार माघ के महीने की बात है कि बादल होकर वर्षा होने लगी। आसपास के सब खेत बरबाद हो गये मगर उपर्युक्त बहिन

जी के चार खेत थे उनमें किसी में कुछ भी नुकसान नहीं हुआ इसलिए मानना पड़ता है कि हमें जो कुछ भला या बुरा भोगना पड़ रहा है। वह सब हमारी ही करणी का फल है।

शिल्पकला

यद्यपि खाने पीने और पहरने ओढने वगैरह की हमारे जीवन निर्वाह योग्य चीजें सब खेती करने से प्राप्त होती है जमीन जोतकर पैदा करली जाती हैं फिर भी इतने मात्र से ही वे सब हमारे काम में आने लायक हो रहती हों सो बात नहीं किन्तु उन्हें रूपान्त करने से उपयोग में लाई जाती हैं जैसे कि खेत में उत्पन्न हुये अन्न को पीस कर उसकी रोटियां बनाकर खाई जाती हैं अथवा इसे भुनकर चबाया जाता है। कपास को चरखी में से निकालकर उसे पीन्दकर फिर उसे चर्खे से कातकर सूत बनाया जाता है और बाद में उसका करघे के द्वारा वस्त्र बुनकर पहिना जाता है। तिलों को तीलकर तेल बनावा जाता है इत्यादि सब शिल्पकला कहलाती है जो कि अनेक प्रकार की होती है। इस शिल्पकला के विकास में भी हमारे पूर्वजों ने तो अहिंसा की पुट रखी थी एक कोलू में दिन भर में एक मन तिल पिलते थे जिसमें कम से कम एक बैल और एक आदमी लगकर उनके निर्वाह का ध्यान होता था आज की दशा उसके बिल्कुल विपरीत है। आज इसके लिये पशुकी तो कोई जरूरत ही नहीं समझी जाती मिलों में लोहे की मशीन से कई मन तिल एक ही आदमी के द्वारा फोड डाले जाते हैं। आज प्रायः हर एक बात में हर जगह ऐसा ही ता हुआ देखा जाता है जहां कि पैसे से

पैसा बटोरा जाता है जोकि एक श्रीमान् के यहां आकर इकट्ठा हो जाता है और सब भाई बहिन बेकार होकर भूख मरने लग रहे हैं। इस प्रकार आज का शिल्प आम प्रजा के लिये जिवनोपाय न रह कर जीवनघातक बनता चला जा रहा है। शिल्प को बोलचाल की भाषा में दस्तकारी कहते हैं जिसका अर्थ होता है हाथ से काम करना परन्तु आज तो वही सारा काम हाथ से न किया जाकर लोह यन्त्रों से लिया जा रहा है। जिससे विकरण तो अधिक मात्रा में होता है और आवश्यक वस्तुयें भी सुलभ से सुलभतर होती चली जा रही हैं एवं इसी प्रलोभनवश आज के लोग प्रसन्नता पूर्वक इसी मार्ग को अपना रहे हैं। फिर भी जरा गहराई से सोच कर देखा जावे तो इसमें देश की महती क्षति हो रही है। उदाहरण के तौर पर जबकि मुद्रणालय नहीं थे, लोग हस्तलिखित पुस्तकों से काम लेते थे तो प्रायः आदमी लिखने का अभ्यासी था और अपनी पुस्तक को बड़ी सावधानी के साथ रखता था। एक पुस्तक से ही वर्ष दो वर्ष तक ही नहीं सैंकड़ों हजारों वर्षों तक काम निकलता था। तथा जो जिस विद्या को पढ़ लेता था उसे अवश्य याद रखता था। आज स्वयं लिखने का तो काम ही उठ गया, जब जरूरत हुई मुद्रणालय से पुस्तक खरीद ली जाती हैं। प्रत्येक विद्यार्थी के लिये भिन्न २ पुस्तक होनी चाहिये। इतनी ही बात नहीं बल्कि एक विद्यार्थीकि पढ़ने के लिये जब तक कि वह पुस्तक को पढ़कर समाप्त करता है उतने समय में उसकी अनेक प्रतियां फट कर रद्दी बन जाती हैं एवं उसकी वह विद्या फिर भी पुस्तकस्थ ही रह जाती है। उसे उसका बहुत कम अन्श यादहो पाता है सो भी बहुत स्वल्पकाल

परीक्षा पास कर लेने तक के लिये। क्योंकि विचारधारा यह रहती है कि पुस्तक तो है ही फिर याद रखने की क्या आवश्यकता है जब जरूरत होगी पुस्तक को देख लिया जावेगा। पहले जब रेल, मोटर जैसा कोई आम साधन नहीं था तो लोग पैदल चलना जानते थे। हमारे देखते में भी बाज बाज आदमी ऐसा था कि सुबह से श्याम तक साठ पैंसठ मील तक की यात्रा कर लिया करता था। परन्तु जब रेल और मोटरों का आविष्कार हुआ तो लोग पैदल चलना भूल गये। जहां भी जाना हुआ कि बैठे रेल में, या मोटर में और चल दिये। पैदल चलना एक प्रकार का अपराध समझा जाने लगा। अपने यहाँ से कहीं पांच मील की दूरी पर दूसरे गांव जाना हुआ अपने गांव से रेल स्टेशन एक डेढ़ मिल दूर है, उधर जिस गांवको जाना है वह भी स्टेशन से एक डेढ़ मील दूरी पर है फिर भी रेल में बैठ कर चलना। भले ही रेल के आने में एक डेढ़ घन्टे की देर हो तो मुसाफिर खाने में बैठ कर उसकी प्रतीक्षा में लगा देना मगर पैदल चल कर उस गांव नहीं पहुँचना। भले ही रेल में बैठने की जगह न हो तो हैण्डिल पकड़ कर लटकते हुए ही चलना पड़े। एवं जब से साईकलों का प्रादुर्भाव हुआ तब से तो और भी सोचनीय परिस्थिति हो गई। शौच को भी जाना हुआ तो भी चूतड़ के नीचे साईकिल लगाई तब चले, मानो चलने के लिये प्रकृति ने पैर दिये ही न हों। मतलब जैसे जैसे साधन सामग्री की सुलभता होती चली गई वैसे २ मनुष्य अकर्मण्य होता जाकर प्रत्युत आवश्यकताओं से घिरता जा रहा है और जीवन शान्ति के बदले अशान्तिमय हो गया है।

व्यापार

व्यापार शब्द का अर्थ होता है किसी चीज को व्यापकता देना यानि आवश्यकताओं से अधिक होने वाली एक जगह की चीज को जहां पर उसकी आवश्यकता हो वहां पर पहुँचा देना एवं सब जगह के लोगों के लिये सब चीजों की सहूलियत कर देना ही व्यापार कहलाता है। व्यापार का मतलब जैसा कि आजकल लिया जाने लगा है। धन बटोरना सो कभी नहीं हो सकता है किन्तु जनसाधारण के सन्मुख उसको आवश्यक चीज को एक सरीखी दर पर उपस्थित करना और उसमें जो कुछ उचित कमीशन कटौती मिले उस पर अपना जीवन निर्वाह करना ही व्यापार का सच्चा प्रयोजन है। उदाहरण के लिये जैसे हिन्दुस्तान टाइम्स वगैरह दैनिक समाचार पत्रों के बेचने वाले लोग घूम घूम कर बेचते हैं। डेढ़ आना या पांच पैसे जो उन पत्रों का मूल्य निश्चित किया हुआ है ठीक उसी मूल्य पर सबको देते हैं। श्याम तक जितने पत्र उनके द्वारा बिके, प्रति पत्र एक पैसे के हिसाब से उनको कमीशन मिल जाया करता है जिससे उन बेचने वालों का गुजारा हो जाता है और पढ़ने वालों को घर बैठे पढ़ने के लिये पत्र मिल जाता है। सीधा पत्रालय से भी पत्र लिया जाये तो भी उन्हें उतने में ही मिलेगा। अतः उसकी विशेष हानि नहीं होती। ताकि लेने वाले और बेचने वाले दोनों को सुभीता होता है।

आढ़तिया अपने साहूकार के माल को बाजार भाव से बेचता है या अपने ग्राहक को बाजार से परिश्रम कर माल दिलवाता है एवं

लेने वाले और मालदार के बीच में विश्वास का सूत्रधार बन कर रहता है तथा उनसे उचित आढ़त लेकर उस पर अपना निर्वाह करता है तो यह व्यापार है। मगर वही आढ़तिया कहलाने वाला व्यक्ति लोभवश होकर किसी प्रकार का बीच बचाव कर खाने लगता है तो ऐसा करना पाप है और फिर वह व्यापारी न रह कर चोर कहलाने लायक हो जाता है।

बाजार के माल को हठात अधिक दर में खरीद कर अपने यहां ही इकट्ठा कर रखना, किसी प्रकार की धौंस दिखा कर अपने माल को ऊंची दर से बेचना एवं दूसरे के माल को नीची दर से खरीदने की विचारधारा रखना, किसी एक को वही माल कम दर पर दे देना, किन्तु किसी भोले भाई से उसी के अधिक दाम ले लेना इत्यादि चौरबाजारीपन व्यापार का कलङ्क हैं। हां, बाजार में जो माल बिकते बिकते शेष बच रहा है और माल मालिक उसे बेच कर अपना पल्ला खलास करना चाहता है ऐसे माल को कुछ साधारण से कम दर में खरीद कर अपने पास संग्रह कर रखना बुरा नहीं बल्कि अच्छा ही है ताकि यदि कोई कल को भी उस माल को लेने वाला आवे तो उसे भी आसानी से वह माल उसी साधारण दर पर दिया जा सके। इस प्रकार बाजार की सम्पन्नता बनी रहे।

उदारता का फल सुमधुर होता है

रामपुर नाम के नगर में एक रघुवर दयाल नाम के बोहराजी रहते थे। जिनके यहां कृपककारों को अन्न देना जिसे खाकर वे खेती का काम करें और फ़सल पककर तैयार होने पर मन भर अन्न

के बदले में पांच सेर मन अन्न के हिसाब से वोहरा जी को दे दिया करें बस यही धन्धा होता था। वोहराजी के दो लड़के थे। एक गोरीशंकर दूसरा राधाकृष्ण। वोहराजी के मरने पर दोनों भाई पृथक २ हो गये और अपने २ कृषकों को उसी प्रकार अन्न देकर रहने लगे। विक्रम सम्वत् उन्नीसौ छप्पन की साल में भयङ्कर दुष्काल पड़ा। बिल्कुल पानी नहीं बरसा। जिससे अन्न का भाव बारह आने दस आने मन का था वह घट कर पांच रुपये मन का भाव हो गया। गोरीशंकर ने सोचा कि अब किसानों को बाढ़ी पर अन्न देकर क्यों खोया जावे? बेच कर रुपये कर लिये जावें। किसानों ने कहा वोहरा जी ऐसा न कीजिये, इस दुष्काल के समय में हम लोग खाने के लिये दूसरी जगह कहाँ से लावेंगे? परन्तु गोरीशंकर ने इस पर कोई विचार नहीं किया। इधर राधा कृष्ण ने विचार किया कि यह अकाल का समय है, लोग अन्न के बिना भूख मर रहे हैं। तेरे पास में अन्न है। यह फिर किस काम में आवेगा? एवं उसने ढिंढोरा पीटवा दिया कि चाहे वह मेरा किसान हो या कोई और हो जिसको भी खाने के लिये अन्न चाहिये यहां से लेजावे यह देख कर गौरीशंकर ने कहा कि राधाकृष्ण बे समझ है जोकि इस समय अपने बेसकीमती अन्न को इस तरह लुटा रहा है।

गोरीशंकर ने अपने अन्न को बेच कर रुपये खड़े करना शुरू किया। किन्तु उसके यहां एक दिन चोरी हो गई तो उसने अपने रुपयों को जमीन में गाड़ रखा। छपनिया अकाल धीरे धीरे समाप्त हो लिया। सत्तावन की साल में प्रकृति कुछ ऐसी कृपा हुई कि समय

समय पर उचित वर्षा होकर खेती में अनाप-सनाप अन्न पैदा हुआ, जिससे आठ सेर के भाव से बढ़ते बढ़ते अन्न का भाव रुपये का डेढ़ मन हो लिया। गोरीशंकर ने इस समय अन्न खरीद कर रखने का मौका है यह सोच कर जमीन में से अपने रुपयों को निकाल कर देखा तो रुपयों के पैसे बन गये हुये थे। तब क्या करे अपने भाग्य पर रोने लगा। उधर राधाकृष्ण का अन्न जिन्होंने खाया था, प्रसन्न मन से मन की एवज में दो मन अन्न ले जाकर उसके यहां जमा कराने लगे ताकि अन्न की टाल लग गई।

पशु पालन

सुना जाता है कि एक न्यायालय में न्यायाधीश के आगे पशुओं में और मनुष्यों में परस्पर में विवाद छिड़ गया। मनुष्यों का दावा था कि पशुओं की अपेक्षा से हम लोगों का जीवन बहुमूल्य है। पशुओं ने कहा कि ऐसा कैसे माना जा सकता है बल्कि कितनी ही बातों को लेकर हम सब पशुओं का जीवन ही तुम्हारी अपेक्षा से अच्छा है। देखो कि गजमुक्ता सरीखी कितनी ही बेशकीमती चीजें तुम्हें पशुओं से ही प्राप्त होती हैं। क्योंकि कवि लोग जब कभी तुम्हारी प्रेयसी के रूप का वर्णन करते हैं तो मृगनयनी, गजगामिनी इत्यादि रूप से पशुओं की ही उपमा देकर बताते हैं। बल पराक्रम भी तुम्हारी अपेक्षा से हम पशुओं का ही प्रशंसा योग्य माना गया हुआ है। इसी लिये जब तुम्हें बलवान बताया जाता है तो पुरुषसिंह नरशार्दूल वगैरह कह कर पुकारा जाया करता है। और तो क्या? पशु का मृत शरीर भी प्रायः कुछ न कुछ तुम्हारे काम में आता ही है!

जैसे कि मृतक पशु के चमड़े के जूते बनते हैं जिन्हें पहिन कर तुम आसानी से अपना मार्ग तय कर जाते हो। तुम्हारा शरीर तो किसी के कुछ भी काम में नहीं आता बल्कि साथ में दश बारह मन लक्कड़ और दश बारह गज कपड़ा और ले जाता है। इस पर मनुष्य लोग बहुत झेंपे और अपना दावा वापिस उठाने को तैयार हो गये। तब न्यायाधीश बोला कि भाई! तुम कहते हो सो तो सब ठीक ही है परन्तु एक बात खास है जिसकी वजह से मनुष्य बड़ा भला गिना जाता है और वह यह है कि पशुवर्ग परिश्रमशील होकर भी वह अपने आपकी रक्षा का प्रबन्ध खुद नहीं कर सकता किन्तु मनुष्य में इस प्रकार की विचारशीलता है कि वह अपनी रक्षा का तथा पशु की रक्षा का भी प्रबन्ध करने में समर्थ होता है।

देखो—एक बुढ़िया थी। जिसके पास एक गाय भी रहती थी। चौमासे के दिन आये तो वर्षा होना शुरू हुई। एक दिन वर्षा ऐसी हुई कि मूसलधार पानी पड़ने लगा। झड़ी लग गई ताकि लोग घर से बाहर निकलने में असमर्थ थे। रोज बाजार में हरी घास आया करती थी ताकि मोल लेकर बुढ़िया अपनी गाय को चरा लिया करती थी। मगर उस दिन बाजार में जब घास नहीं आई तो क्या हो? पशु को क्या डाला जावे? बुढ़िया को दैवगति से सूखी घास, भूसा भी न थी ताकि वही डाल कर पशु को थोड़ा सन्तोष दे लिया जावे। अतः गाय भूखी ही खड़ी रही। उसे भूखी खड़ी देख कर बुढ़िया सोच में पड़ गई। कहने लगी कि हे भगवान! क्या करूं? गो भूखी है; यह भी तो मेरे ही भरोसे पर है। यह पहिले खाले तो बाद में मैं खाऊंगी ऐसा संकल्प कर वह भगवान् से करने

लगी। इतने में ही एक घसियारा आया। उस वरसते हुये मेंह में और बोला कि मांजी! क्या तुम्हें अपनी गाय के लिये घास चाहिये? अगर हाँ तो यह लो इतना कह कर घास गाय के आगे डाल दी। बुढ़िया बहुत खुश हुई और बोली बेटा! बहुत अच्छा किया, ले अपने घास के पैसे ले जा। मा जी पैसे तो फिर कभी ले जाऊंगा ऐसा कहते हुये घसियारा दौड़ गया सो आज तक नहीं आया। आता भी कहां से वह कोई घसियारा थोड़े ही था वह तो उस बुढ़िया की पवित्र भावना का ही रूप था।

मतलब यह कि आश्रित के खान पान का प्रबन्ध करके स्वयं भोजन करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है जिसमें भी वह आश्रित भी यदि मनुष्य है तो वह तो अपना खाना आप कह कर भी हमसे ले सकता है। पशु तो बेचारा- स्वयं तो मूक होता है उसका तो फिक्र हमें ही करना चाहिये। तभी हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। उसके करने योग्य परिश्रम तो उससे हम करा लेवे और खाना खिलाने के समय उसे हम भूल जावें यह तो घोर अपराध है।

अन्याय के धन का दुष्परिणाम

एक दर्जी के दो लड़के थे जो कि एक एक टोपी रोजाना बनाया करते थे उनमें से एक जो सन्तोषी था वह तो अपनी टोपी के दो पैसों में से एक पैसा तो खुद खाता था और एक पैसा किसी गरीब को दे देता था। एक रोज़ एक दो दिन का भूखा आदमी उसके आगे आ खड़ा हुआ। उस दर्जी ने जो टोपी तैयार की थी

उसके दो पैसे उसके पास आये तो उनमें से एक पैसा उसने उस पास में खड़े गरीब को दे दिया। गरीब ने उस पैसे के चने ले कर खा लिये और पानी पी लिया। अब उसके दिल में विचार आया कि देखो यह दर्जी का लड़का एक टोपी रोज बना लेता है जिससे दो पैसे रोजाना लेकर अपना जीवन बड़े आनन्द से बिता रहा है। मैं भी ऐसा ही करने लगूं तो क्यों भूख मरूं ऐसा सोचकर उसके पास टोपी बनाना सीख गया और फिर अपना गुजर अपने आप करने लगा। उसके दिन अच्छी तरह से कटने लगे।

इधर उसी दर्जी का दूसरा लड़का टोपी तैयार कर रोजाना जो दो पैसे कमाता था उनमें से एक पैसा तो खुद खा जाता और १ पैसा रोज बचाकर रखता था उससे चोसठ दिन में उसके पास १ रुपया जुड़ गयाउसने उसे चिट्ठी खेल में लगा दिया संयोगवश चिट्ठी उसी के नाम से उठ गई जिससे उसके एक लाख रु० की आमद हुई अब तो उसने सोचा दिन भर परिश्रम करना और दो पैसे रोजाना कमाना इस दर्जी के मनहूस धन्धे में क्या धरा है। छोड़ो इसे और आराम से जीवन बीतने दो। इसके पड़ोस की जमीन में एक गरीब भाई झोंपड़ी बनाकर रह रहा था। इसने सरकार से उसे खरीद कर वहां एक सुन्दर कमरा बनाया और अपने बाप भाई से अलहदा रहने लगा, शराब पीने लगा, रण्डियां नचाने लगा, अपने आप घमण्ड में चूर होकर औरों को तुच्छ समझने लगा। एक रोज यह अपने भाई दर्जी के पास खड़ा था सो उसे अपनी टोपी के दो पैसों में से एक पैसा किसी गरीब को देते देखकर इसके भी विचार आया कि देखो इसने अपने दो पैसों में से ही एक

पैसा दे दिया किन्तु मेरे पास इतना पैसा होकर भी मैं किसी को कुछ नही दे रहा हूं। मुझे भी कुछ तो दान करना चाहिये। इतने में इसके सम्मुख एक मस्टण्डा आ खड़ा हुआ जिसे इसने अपने पाकेट में से निकाल कर पांच असर्फियां दे दी। उन्हे लेकर वह फुल गया कि देखो आज मेरी बड़ी तकदीर चेती। चलो आज तो शराव पीयेंगे और सिनेमा में चलेंगे। वहां जाते समय रास्ते में किसी की वहू बेटी से मजाक करने लगा तो पुलिस ने पकड़ लिया और थाने में भेज दिया ताकि कैद कर लिया गया। ठीक है जैसी कमाई का पैसा होता है वह वैसे ही रास्ते में लगा करता है और उससे मनुष्य की वुद्धि भी वैसी ही हो जाया करती है।

कर्त्तव्य और कार्य

शरीर के भरण पोपण के लिये किया जाता है ऐसा खाना पीना सोना, उठना वगैरह कार्य कहलाता है जिसे कि संसारी प्राणी चाह पूर्वक अनायास रूप से किया करता है। जो आत्मोन्नति के लिए प्रयत्न पूर्वक किया जाता है ऐसा भगवद्भजन परोपकार आदि कर्त्तव्य होता है। कार्य को तो उतर प्राणियों की भांति नामधारी मानव भी लगन के साथ करता है मगर वह कर्त्तव्य को सवर्था भूले हुए रहता है। उसके विचार में कर्त्तव्य का कोई मूल्य नहीं होता परन्तु वही जव मानवता की ओर ढलता है तो कर्त्तव्य को भी पहिचानने लगता है यद्यपि उसका चन्चल मन कर्त्तव्यों की ओर न जाकर उसे कार्यों में लगे रहने के लिये वाध्य करता है फिर भी वह समम निकालकर हठात् अपने मन को कर्तव्य के

साथ में जोड़ता है। भले ही उसका मन रस्से से बन्धे हुए भूखे बैल की तरह छटपटाता है और वहां से भागना चाहता है तो भी उसे रोककर रखता है। इस तरह धीरे २ अभ्यास करके वह अपने मन को कर्त्तव्योंपर जमाता है तो फिर कर्त्तव्य तो उसके लिये कार्य रूप हो जाते हैं और कार्य कहलाने वाली बातें कर्त्तव्य समझकर करने योग्य ठहरती हैं। मान लीजिए कि एक चिरकाल का बना हुआ सच्चा साधु है वह समता वन्दना स्तवनादि आवश्यकोंको नित्यठीक समय पर सरलता के साथ करता रहता है दिन में एक बार खाना और अपर रात्रि में जमीन पर सो लेना भी उसके लिये बताया गया है किन्तु वह तो कभी वास कभी बेला कभी तेला आदि कर जाया करता है जब देखता है कि अबतो शरीर बिना भोजनादिदिए काम नहीं देता इसे अब भोजन देना ही होगा तब कभी देता है। शयन का भी यही हाल होता है कभी कुछ देर के लिये नीन्द ली तो ली, नही तो फिर सारी ही रात्री भजन भाव में बिता दी गई। मतलब कहने का यह कि भोजनादि के बिना भले ही रहा जा सकता है परन्तु भगवद्भजन के बिना रहना किसी भी दशा में ठीक नहीं इस प्रकार इन्द्रीय मनोनिग्रह रूप वृत्ति जहां हो रहती है वहां फिर खाना, पीना, सोना, उठना, चलना फिरना आदि सभी क्रियाएं आत्मोन्नति के पथ में साधन रूप से स्वीकार्य होकर आदर्श रूप बन जाती हैं।

साधक का कार्य क्षेत्र

भूमि तल बहुत विशाल है और इसमें नाना विचारों के

आदमी निवास करते हैं कोई बुरी आदत वाला आदमी है तो कोई कुछ अच्छी आदत वाला। एवं मनुष्यका हिसाव ही कुछ ऐसा है कि यह जैसे कि संगतिमें रहता है तो प्रायःआप भी वैसा ही हो रहता है जिसमेंभी अच्छेके पासमें रहकर अच्छाई को वहुत कम पकड़पाता है किन्तुबुरे के पास में होकर बुराई को वहुत शीघ्र ले लेता है जैसे कि उजला कपड़ा कोयलों पर गिरते ही मैला हो जाता है परन्तु फिर वह साबुन पर गिर कर उजला वन जाता हो सो बात नहीं। उसे उजला वनाने के लिये उसके ऊपर साबुन चुपड़ना होगा और फिर पानी से उसे धोना होगा फिर कहीं वह उजला वन सकेगा। अतः अपने आपको बुराइयों से वचाये रखने के लिये और भलाई को प्राप्त करने के लिये मनुष्य को चाहिये कि वह अपना निवास स्थान भले आदमियों के सहवास में वनावे। उन्हीं के साथ में अपना लेन देन का संसर्ग स्थापित करे। ऐसे ही स्थानों में अपना जाना आना भी रखे जहां पर कि अधिकतर भले आदमी निवास करते हों। नसेवाज माँसखोर व्यसनी दुराचारी आदमियों का आधिपत्य होने से जहां जाने पर अपने भले आचार विचार में शिथिलता आती दीखे ऐसे स्थानों में जाने आने का परित्याग करदें।

व्यर्थ के पाप पाखण्ड

कहते हुये सुना जाता है कि पेट पापी है इसी के लिये अनेक तरह के अनर्थ करने पड़ते हैं। जबकि हाथ पैर हिला डुला कर भी मनुष्य पेट नहीं भर पाता है तो वह चोरी चकोरी करके भी अपने पेट की ज्वाला को शान्त करना चाहता है, यह ठीक है। इसी बात

को लक्ष्य में रख कर हमारे महर्षियों ने स्थितिकरण अङ्ग का निर्देश किया है। यानि समर्थ धर्मात्माओं को चाहिये कि आजीविका भ्रष्ट लोगों को उनके योग्य आजीविका बताकर उन्हें उत्पथ में जाने से रोकें ताकि देश में विप्लव न होने पावे।

कुछ लोग ऐसे भी हैं कि अपने पास में खाने के लिये अन्न तथा पहनने के लिये कपड़ा अच्छी तादाद में होने पर भी धनवान कहलाना चाहते हैं अतः धन बटोरने के लिये अनेक प्रकार का पापारम्भ करते हुये देखे जा रहे हैं। इस रोग की दवा सन्तोष है। जोकि परिग्रह परिमाण रूप दवाखाने से प्राप्त होती है। परन्तु अधिकांश पाप पाखण्ड तो प्रजा में ऐसे फैले हुए हैं जिनका हेतु सिर्फ मनोविनोद के और कुछ नहीं है अतः उन्हें हमारे महर्षियों की भाषा में अनर्थदण्ड कहा गया है। जिनको कि रोकने के लिये मन पर थोड़ासा अंकुश लगाने की जरूरत है एवं उनके रोकने से देश को हानि के बदले बड़ा भारी लाभ है। उन अनर्थ दण्डों को न करना और न होने देना भी उपासक का कर्तव्य है।

अनर्थ दण्ड के प्रकार

बात ही बात में यदि ऐसा कहा जाता है कि देखो हमारे भारतवर्ष में गेहूँ बीस रुपये मन हैं और सोना सौ रुपये तोले से बिक रहा है। परन्तु हमसे पन्द्रह बीस कोस दूर पर ही पाकीस्तान आ जाता है जहाँ कि गेहूँ तीस रुपये मन में बिक रहे हैं तो सोना पचहत्तर रु० तोला पर मिल जाता है। यदि कोई भी व्यक्ति यहां से वहां तक यातायात की दक्षता प्राप्त कर पावे तो उसे कितना लाभ

हो। इस बात को सुनते ही कार-व्यापार करने वाले को या किसानको सहसा अनुचित प्रोत्साहन मिल जाता है जिससे कि वह ऐसा करने में प्रवृत होकर दोनों देशों में परस्पर विपल्व करने वाला बन सकता है अतः उपर्युक्त कहना पापोपदेश नाम के अनर्थ दण्ड में गिना जाता है। सट्टा फाटका करने वालों को लक्ष्य करके तेजी मन्दी बताना भी इसी में सम्मिलित होता है।

छुरी, कटारी, बरछी, भाला, तलवार वगैरह हथियार बना कर हिंसक पारधी, साँशी, बावरिया आदि को देना सो हिंसा दान नाम का अनर्थ दण्ड है। क्योंकि ऐसा करने से वे लोग सहज में ही प्राणियों को मारने लग जा सकते हैं। कसाई, खटीक, कलार, जुआरी आदि को उधार देना भी इसी में गिना जा सकता है।

बे मतलब के बुरे विचारों को अपने मन में स्थान देना, किसी की हार और किसी की जीत हो जाने आदि के बारे में सोचते रहना, मानलो कि आप घूमने को निकले, रास्ते में दो मल्लों की परस्पर कुस्ती होती देख कर खड़े रह गये और कहने लगे मन में कि इनमें से यह लाल लंगोट वाला जीतेगा और पीली लंगोटी वाला हारेगा। अब संयोगवश पीली लंगोटी वाले ने उसे पछाड़ लगादी तो आपके मन को आघात पहुँचेगा। कहोगे कि अरे यह तो उल्टा होने लग रहा है। इत्यादि रूप से व्यर्थ मन की चपलता का नाम अपध्यान अनर्थदण्ड है।

जिन बातों में फंस कर मन खुदगर्जी को अपना सकता हो ऐसी बातों के पढ़ने सुनने में दिलचस्पी लेना दुःश्रुति नाम का अनर्थ-दण्ड है।

जल वगैरह किसी भी चीज को व्यर्थ बरबाद करना प्रमादचर्या नाम का अनर्थ दण्ड है। जैसे कि आप जा रहे है; चलते २ पानी की जरूरत हो गई तो सड़क पर की नल को खोल कर जितना पानी चाहिये लेलिया किन्तु जाते समय नलको खुला छोड़ गये जिससे पानी गिरता ही रहा। गरमी की मोसम है। रेलगाड़ी में सफर कर रहे हैं बिजलीका पंखा लगा हुआ है, हवा खाने के लिये खोल लिया। स्टेशन आया, आप लापरवाही से उतर पड़े, पंखेको खुला रहने दिया यद्यपि डिब्बे में और कोई भी नहीं बैठा है तो पंखा व्यर्थ ही चलता रहेगा इसका कुछ विचार नहीं किया। आप एक गाँव से दूसरे गाँव को जा रहे हैं। रास्ते के इधर उधर घास खड़ी है किन्तु रास्ता साफ है फिर भी आप घास के ऊपर से उसे कुचलते हुये जा रहे हैं इसका अर्थ है कि आप लापरवाही से पशुओं की खुराक को बरबाद कर रहे हैं इत्यादि सब प्रमादचर्या नाम का अनर्थदण्ड कहलाता है।

मानवपन नपा तुला होना चाहिये

मनुष्य जीवन पानी की तरह होता है। पानी बहता न हो कर अगर एक ही जगह पड़ा रहे तो सड़जाये। हां वही बहता होकर भी आल बगल के दोनों तटों को तोड़ फोड़ कर इधर उधर तितर बितर हो जाये तो भी शीघ्र ही नष्ट हो रहे। मनुष्य भी निकम्मा हो कर पड़ा रहे तो शोभा नहीं पासकता। उसे भी कुछ न कुछ करतें ही रहना चाहिये। उचितार्जन और त्याग रूप दोनों तटों के बीच में होकर नदी की भाँति बहते रहना चाहिये।

यह तो मानी हुई बात है कि खाने के लिये कमाना भी

पड़ता ही है परन्तु कोई यदि विष ही कमाने लगे और उसे ही खाने लगे तो मरेगा ही, जीवित कैसे रह सकेगा। अतः विष का कमाना और खाना छोड़कर इस तरह से कमाया खाया जाय जिससे कि जीवित रहा जासके। मतलब यह कि कमाते खाते हुये मनुष्य को भी कम से कम इस बात का ध्यान तो रखना ही चाहिये कि ऐसा करने में उसकी आत्मा प्रत्युत तामसता की ओर तो नहीं लुढ-कती जा रही है। बल्कि प्रशंसायोग्य बात तो यही कही जावेगी कि कमाना खाना आदि सभी काम हमारे हमें सात्विकता की ओर बढ़ा ले जाने वाले होने चाहिये। हमारे भारत देश के वर्तमान समय के नेता श्रीमान् विनोबाभावे महाशय अपनी बुढापे की अवस्था में भी लोगों को खेती का महत्व बतानेके लिये स्वयं कार्य करते हैं। उसमें उत्पन्न हुये अन्न से निर्वाह करना कर्तव्य समझ कर सादगी से अपना जीवन बिता रहे हैं। अगर वे बैठना चाहें तो उनके लिये मोटरों पर मोटरें आकर खड़ी हो सकती हैं मगर फिर भी उन्हें जहाँ जाना होता है पैदल ही जाते हैं। वल्लभ भाई पटैल एक रोज अपने कमरे में बैठे हुये कुछ आगन्तुक लोगों से आवश्यक बातें कर रहे थे। इतने में समय हो जाने पर वल्लभ भाई पटैल साहेब की लड़की चाय लेकर आई जिसकी कि शाड़ी कई जगह से फटी और सिली हुई थी। अतः उन आगन्तुकों में से बोलउठा कि बहन जी आप इस प्रकार फटी हुई साड़ी कैसे पहन रही हैं। जबाब मिला कि नई साड़ी किसकी कहां से ले आऊं? आगन्तुक ने कहा कि बहन जी! आप यह क्या कह रही हैं? कुछ समझ में नहीं आता। आप कहें तो एक साड़ी क्या आवे बल्कि यहां आकर

स.ड़ियों की टाल लग सकती है। इसपर वहन जी तो क्या वोलती ? सुना अनसुना कर चली गई। पीछे से पटेल साहब ने कहा कि हमारे यहाँ हाथ से सूत काता जाता है और उसका हाथ से बुना हुआ कपड़ा ही काम में लिया जाता है। वह इतना ही वन पाता है जिससे कि सारे कुटुम्ब का काम किफायतसारी के साथ में चला लिया जा सके। ऐसा सुन कर आगन्तुक महाशय दङ्ग रह गया; सोचने लगा कि ओह ऐसे रईस घराने का ऐसा रहन सहन। घर में मनचाही चीजें होते हुये भी अपने सिर्फ सादा खाना और सादा पहिनना और सब कांग्रेस के लिये परार्थ-जनता की सेवा के लिये। इसी को कहते हैं अमीरी में गरीबी का अनुभव करते हुये रहना। मानव जीवन हो तो ऐसा ही संतोषमय नपा तुला होना चाहिये। फैसनवाजी में फंस कर मानव जीवन को वरवाद करना तो अमृत को पैर धोने में खोना है।

शाकाहारी वनना चाहिये

जिससे शरीर पुष्टि को प्राप्त हो या भूख मिटे उसे आहार कहते हैं। वह मुख्य तथा दो भागों में विभक्त होता है। शाकपात और मांस जब हम पशुओं की ओर निगाह डालते हैं तो दोनों ही तरह के जीव उनमें पाते हैं। गाय, वैल, भैंस, ऊंट, घोड़ा, हाथी, हिरण आदि पशु शाकाहारी हैं जोकि उपयोगी तथा शान्त होते हैं परन्तु सिंह, चीता, भालू, भेड़िया आदि पशु मॉंसाहारी होते हैं जो कि क्रूर एवं अनुपयोगी होते हैं। इनसे मनुष्य सहज में ही दूर रहना चाहता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मांसाहार क्रूरता

का करने वाला है किन्तु शाकाहार सौम्यता का सम्पादक। मनुष्य जबकि स्वयं शान्ति प्रिय है अतः उसे मांसाहार से दूर रहकर शाकाहार से ही अपना निर्वाह करना चाहिये। आज हम देख रहे हैं कि हमारे देशवासियों की प्रवृति शाकाहार से उपेक्षित होकर मांसाहार की ओर बढ़ती जा रही है। आज से कुछ दिन पहले जिन जातियों में मांसाहारी व्यक्ति देखने को नहीं मिल रहा था वहीं पर आज बीस पच्चीस फीसदी आदमी मांस के खाने वाले मिल जावेंगे। यह भी हमारे देश के लिए दुर्भाग्य का चिन्ह है जिससे कि लोग अन्नोत्पादन की तरफ विशेप ध्यान न देकर मछलियों के तथा मुर्गियों के अण्डों के उत्पादन की ही कोशिश में लगे हुवे हैं। आश्चर्य तो इस बात का है कि जो देश अन्नोत्पादन का नाम नहीं जानते थे उन देशों में तो अन्न अब कसरत के साथ में उत्पन्न होने लग गया है और जो भारत सदा से अन्नोत्पादन का अभ्यासी रहा हे उसी देश के वासी आज यह कहने लगे हैं कि खाने के लिये अन्न की कमी है। अतः मछलियां पैदा की जावे। मैं तो कहता हूं कि इस बेढङ्गे प्रचार से कहीं ऐसा न हो जावे कि हम लोग अन्नोत्पादन का रहा सहा महत्व भी भूल जावें।

सुना जाता है कि एक बार अरब देश में बहुत भयंकर दुष्काल पड़ा। अन्न मिलना दुसह हो गया अतः वहां के उस समय के देश नेता मुहम्मद साहब ने उसे आपत्काल में मांस खाकर निर्वाह करने का आदेश दे दिया। धीरे २ लोग मांस खाने के आदि बन गये तो उनकी निगाह में अब वह मांस खाना एक सिद्धान्त सा ही हो गया मतलब यह कि एक बार मांस खाने की लत पड़ जाने से मनुष्य

उसे छोड़ने के लिये लाचार हो रहता है और अपनी आदतवश वह धीरे २ मनुष्य के मांस को भी खाने लग जा सकता है। एवं इस दुर्व्यसन का परिणाम बहुत विप्लवकारक हो रहता है। मानव को ही घोर दानवता का पर पहुंचा देता है। अतः समझदार को चाहिये कि वह शुरु से ही इससे दूर रहे केवल शाकाहार पर ही अपना निर्वाह करे।

दूध का उपयोग

भोले भाई ही नहीं बल्कि कुछ पढ़े लिखे लोग भी ऐसा कहते हुए पाये जाते हैं कि जो दूध पीता है वह माँस खाने वाला स्वयं बन जाता है क्यों दूध मांस में से ही होकर आता है फिर दूध तो पिया जाये और मांस खाना छोड़ा जाय यह व्यर्थ की बात है उन ऐसा कहने वाले भले आदमियों को जरा सोचना चाहिये कि अन्न भी तो खाद में से पैदा होता है सो क्या अनाज को खाने वाला खाद को भी खा लेता है ? नहीं क्योंकि खाद के गुण धर्म कुछ और हैं तो अन्न के गुण धर्म कुछ और ही। अतः खाद जुदी चीज है तो अन्न उससे जुदी चीज। इसी प्रकार मांस जुदी चीज है और उसी जगह पैदा होने वाला दूध उससे जुदी चीज। मांस तमोगुण समुत्पादक है तो दूध सतोगुण सम्पादक। किसी के मांस को नोचा जावे तो कष्ट होता है। किन्तु दूध को अगर न निकाला जावे तो कष्ट देने वाला हो रहता है। मांस उस २ प्राणी के शरीर का आधार भूत होता है तो दूध किसी के किसी समय कुछ काल तक के लिये। माँस हर समय हर हालत में कीटाणुओं का समुत्पत्ति

स्थान होता है तो ताजा दूध कीटाणुओं से रहित। इत्यादि कारणों से मांस अग्राह्य है किन्तु दूध ग्रहण करने योग्य।

यहां पर एक तर्क और भी उठाई जा सकती है कि गाय का दूध निकालने वाला आदमी उसके बच्चे के हक को छीन लेता है अतः वह ठीक नहीं करता परन्तु इस ऐसा कहने वाले को जरा सोचना चाहिए कि अगर गाय के दूध पर सर्वथा उसके बच्चे का ही अधिकार है। वह उसी के हक की चीज है तो फिर जो उस गाय को पालता पोषता है उसका भी कोई हक है या नहीं। यदि कहा जावे कि कुछ नहीं तो फिर वह उसे क्यों पालता पोषता है? हां जब तक कि बच्चा घास खाना न सीख जावे तब तक उसका ध्यान अवश्य रखना चाहिये। बाद में भी सारा का सारा ही न निकाल कर कुछ दूध उसके लिये भी छोड़ते रहना चाहिए।

न सेवा जी से दूर हो।

दुनियाँ की चीजों में से कुछ अन्न आदि चीजें तो ऐसी है जिनका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि के साथ में नहीं होकर वे सब केवल शरीर के सम्पोषण के लिये ही खाये जाते हैं। ब्राम्ही शंख पुष्पी आदि जड़ी बूटियाँ ऐसी हैं जो मनुष्य की बुद्धि को ठिकाने पर रखकर उसके बढ़ाने में सहायक होती है। परन्तु भांग, तम्बाखू चरस गांजा सुलफा वगैरह वस्तुएँ ऐसी भी हैं जो उत्तेजना देकर मनुष्य की बुद्धि को विकृत बना डालती है। जिनके सेवन करने से काम वासना उदीप्त होती है। अतः ऐसी चीजों को कामुक लोग पहले तो सोकिया रूप से सेवन करने लगते हैं मगर जिस चीज का

उन्हें नशा करने की आदत है वह चीज यदि नहीं मिले तो विकल हो उठते हैं। वाज वाज आदमी तो नशे का इतना आदि हो जाता है कि उस नशे की धुन में अपने आपको भी भूलकर न करने लायक घोर अनर्थ करने को भी उतारू हो जाता है।

एक वार की वात है कि एक अफीमची अपनी औरत को ले आने के लिये ससुराल को गया। वहां से अपनी प्राण-प्यारी को लेकर वापिस लौटा तो अपनी अफीम की डिविया को वहीं भूल कर आ गया। रास्ते में जब उसके अफीम खाने का समय आया, देखे तो अफीम की डिविया तो है नहीं। यह देखकर वह बड़ी चिन्ता में पड़ गया और वहीं पर एक वृत्त के नीचे वैठ गया। औरत वोली कोई वात नहीं, गांव अव थोड़ी ही दूर रहा है अभी चले चलते हैं मरद ने कहा मेरे से तो अव विना अफीम के एक पैंड भी नहीं चला जावेगा। स्त्री ने कहा यहां जंगल में अफीम कहां रखी है फिर भी अफीमची ने नहीं माना। स्त्री वड़ी पसोपेश में पड़ी और इधर उधर देखने लगी तो एक कुटिया दीख पड़ी; वहां गई तो उसमें एक आदमी वैठा पाया। जाकर वोली कि महाशय! क्या आपके पास में कुछ अफीम मिल सकती है। मेरे स्वामी अफीम खाया करते हैं उनके पास अफीम नहीं रही है। वह वोला अफीम है तो सही मगर वह मुफ्त में ही थोड़े मिलती है। स्त्री ने कहा आप जो उचित समझें वह मूल्य ले लीजिए और एक खुराक अफीम की दे दीजिए। कुटीचर ने कहा अफीम की एक खुराक का मूल्य एक वार एकान्तवास। यह सुनते ही स्त्री दंग रह गई और अपने स्वामी के पास लौटकर आई तो स्वामी ने फिर वही वात

कही कि मैं क्या करूं। मैं तो अफीम के पीछे विवश हूँ अतः जैसे हो वैसे ही मुझे तो अफीम लाकर दें तभी कुछ आगे की मुझे सूझेगी।

बन्धुओ देखा आपने अफीमची का हाल। अफीमची का ही नहीं सभी तरह के नशेबाजों का ऐसा ही हिसाब है! कोई कैसा भी नशा करने वाला क्यों न हो उसकी चेतना तो उस नशे के अधीन हुआ करती है। कम से कम तम्बाखू बीड़ी पीने वाले को ही ले लीजिए। उसके पास भी समय पर तम्बाखू न होगी तो यह भी चाहे जिससे तम्बाखू मांगकर पीना चाहेगा। इसीलिए कहावत भी प्रसिद्ध है कि अगर नहीं मांगना जानता है भीख तो तम्बाखू पीना सीख। तमाखू पीने वाला स्वयं यह अनुभव करता है कि इसकी ही वजह से मुझे खांसी, श्वासादि अनेक रोग हो रहे हैं। फिर भी वह उसे छोड़ने के लिए लाचार हो रहता है। मतलब यह कि नशे-बाज आदमी धर्म, धन और शरीर तीनों को ही खो डालता है इसी लिये हमारे महर्षियों ने इसे दुर्व्यसन बताया है। उन सब नशों में शराब का नशा सबसे अधिक बुरा है गुड़, महुआ आदि चीजों को सड़ाकर उनसे शराब बनाई जाती है जोकि बहुत से त्रस जीवों का कलेवरमय हुआ करती है अतःउसका पीने वाला प्रथम तो बहुतसे त्रस जीवोंकी हिंसा का पातक बनता है फिर शराब की लतभी ऐसी बुरी होती है कि जिसमें भी वह पड़ गई छुटनी दुष्वारहो जाता है शराब के नशे में चूर हुआ मनुष्य पागल ही क्या आज बाज मौके पर तो बिल्कुल बे-भाव ही हो रहता है। इस शराबखोरी में पड़कर कितने ही भले भले घराने भी बिगड़कर बरबाद हो गये हैं। शराब पीये

हुए के मुंह से ऐसी बुरी दुर्गन्ध आती है कि कोई भी भला आदमी उसके पास बैठना नहीं चाहता है। शराब पीना या और भी किसी प्रकार का नशा करना व्यभिचार का तो मूल सूत्र है ऐय्यासी करना तो सिखाता ही है। साथ ही वह मांस खाने की प्रेरणा देता है। मांस खाने वाला शिकार करने को बाध्य होता है। शिकार करना चोरी या दगेबाजी से खाली नहीं है हठात् किसी के प्राणधन को अपहरण करना तो सब से बड़ी चोरी है। इस प्रकार शराबखोरी सब तरह के अनर्थों का प्रधान कारण है ऐसा सोच कर समझदारों को इससे सर्वथा दूर ही रहना चाहिये।

रात्रि में भोजन करना मनुष्य के लिये अप्राकृतिक है

शारीरिक शास्त्र जो कि मनुष्य स्वास्थ्य को दृष्टि में रख कर बना है उसका कहना है कि दिन में पित्त प्रधान रहता है तो रात्रि में कफ। एवं भोजन को पचाना पित्तका कार्य है अतः मनुष्य को दिन में ही भोजन करना चाहिये। इसलिये वैद्य लोग अपने रोगी को लंघन कराने के अनन्तर जो पथ्य देते हैं वह रात्रि में कभी भी न देकर दिन में ही देते हैं। दिन में भी सूर्योदय से एक डेढ घंटे बाद से लगाकर मध्याह्न के बारह बजे से पहले ही पथ्य देने का आदेश करते हैं क्योंकि पित्त का समुत्तम काल यही है। हां एक बार का योग्य रीति से खाया हुआ अन्न अधिक से अधिक छः घण्टे में पचकर फिर दुबारा खाने की प्रेरणा देता है। यानी दस बारह बजे के बीच में जिस आदमी ने भोजन किया है उसे चार छः बजे के बीच में फिर खाने की आवश्यकता

हो जाती है। परन्तु अपराह्न में जो भोजन किया जाय वह स्वल्प मात्रा में होना चाहिये ताकि वह कफ का काल आने से पहले पचा लिया जासके। ऐसी हमें हमारे वैद्दक शास्त्र की आज्ञा है।

रात्रि में कफ प्रधान, काम सेवन का और शयन का समय आ जाता है सो काम सेवन भी भोजनानन्तर में नहीं किन्तु भोजन का परिपाक होने पर करना ठीक होता है तथा शयन करना नीन्द लेना तो भोजनानन्तर में बिलकुल ही विरूद्ध कहा गया है। दिन में भी जब किसी रोगी को पथ्य दिया जाता है तो उसे उस अन्न के गहल से नीन्द आने लगती है फिर भी हमारे प्राणाचार्यों का कहना होता है कि अभी इसे नीन्द नहीं लेने देना अन्यथा तो यह खाया हुआ अन्न जहर बन जावेगा।

दिन भर काम करके थक लिये हुये मनुष्य को अपनी थकान दूर करने के लिये कम से कम छः घंटे नीन्द लेना भी जरूरी माना गया हुआ है। अतः सूर्यास्त के समय सन्ध्या वन्दन करने के अनन्तर कुछ समय हास्यविनोद में बिता कर फिर रात्रि के दश बजे से लेकर चार बजे रात तक नीन्द लेनी चाहिये। चार बजे के बाद प्रातःकाल में अपने शरीर रूप यन्त्र के पुरजों को संशोधन कर साफ सुथरा बनाने के लिये भगवद्भजनपूर्वक शौच जाना और स्नान करना भी जरूरी हो जाता है।

फलिततार्थ यह निकला कि दिन के नो दश बजे से लेकर दिन के चार पांच बजे तक का समय मनुष्य के लिये भोजन के योग्य होता है। उसमें त्यागी ब्रह्मचारियों के लिये तो महर्षियों ने एक ही वार भोजन करने का आदेश दिया है। गृहस्थ लोग

पूर्वाह्न में और अपराह्न में इस तरह दो बार भोजन कर सकते हैं। किन्तु जो लोग रात दिन में कई बार भोजन करते हैं, जब चाहा जभी खा लिया ऐसी आदत वाले होते हैं, वे लोग अपने मनचलेपन की वजह से मनुष्यता को भूले हुये हैं ऐसा हमारे महापुरुषों का का कहना है। एवं जो लोग रात में भी खाने से ही धन्धा रखते हैं उनमें और निशाचरों में तो फिर कोई भी अन्तर नहीं रह जाता है।

रात्रि में भोजन करने से हानि

अकबर बादशाह कोम से मुसलमान थे। किन्तु हिन्दुओं के साथ भी उनका अच्छा सम्पर्क था। उनका प्रधान मन्त्री बीरबल भी ब्राह्मण था। उनके पास और भी भले २ हिन्दू रहते थे। एक दिन दिन में खाने वाले किसी बीचारशील हिन्दू आदमी ने उनसे कहा कि हुजूर! आप रात्रि में खाना खाते हैं यह ठीक नहीं कर रहे हैं। बादशाह बोले कि क्यों क्या हानि है? जबाब मिला कि हानि तो बहुत हैं। सबसे पहली हानि तो यही है कि रात्रि में अन्धकार की वजह से भोजन में क्या है और क्या नहीं है, यही ठीक नहीं पता चला करता है। तब बादशाह बोले कि दीपक के उजाले में अच्छी तरह से देखकर खाया जावे तो फिर क्या बात रह जाती है? जबाब मिला कि बात तो और भी है परन्तु अभी आप इतना ही करें कि दीपक के प्रकाश में अच्छी तरह से देखकर ही खाया करें। अब बादशाह रोज ऐसा ही करने लगे। एक रोज सजा हुवा थाल बादशाह के आगे टेबिल पर ला कर रखा गया तो

बादशाह बोले कि दीपक लाओ तब देखकर खाया जावेगा। दीपक आया और देखा गया तो भोजन में घी और मीठे की वजह से जहरीली कीड़ियों का नाल लगा हुवा है। बादशाह को विचार आ गया तो नियम किया कि आगे के लिये रात्रि को न खाकर दिन में ही खाया जावे यही बात अच्छी है।

हाँ! यह कहा जा सकता कि वह समय कुछ और था। आज तो स्थान २ पर बिजली की रोशनी होती है जिसमें अच्छी तरह देख कर खालिया जा सकता है। परन्तु उन्हें ऐसा कहने वालों को इतना भी तो सोचना चाहिये कि बिजली के प्रकाश में भी पतङ्ग, मच्छर वगैरह आकर भोजन में पड़ेगें। जिनमें कितने ही मच्छर ऐसे भी होते हैं जो कि खाने में आजाने से अनेक प्रकार के भयङ्कर रोग हो जाते हैं।

पर्यालोचन

मनुष्य विस्मरण शील होता है और उसके जुम्मे अपने शरीर को सम्भाल कर रखना, बाल बच्चों का लालन पालन करना, अभ्यागतों का सत्कार करना, बुजर्गों की टहल करना, दीन-दुःखियों की सेवा करना मित्र दोस्तों के साथ प्रेम से सम्भाषण करना, भगवद्भजन करना आदि अनेक तरह के कार्य लगे हुये होते हैं। उनमें से कौनसा कार्य किस प्रकार से आज मुझे सम्पादन करना चाहिये, कौनसे कार्य सम्पादन करने में मैंने क्या गलती खाई है। कहीं मैंने मेरे तन मन वचन और धन के घमण्ड में आकर कोई न करने योग्य अनुचित वर्ताव तो नहीं कर डाला है। मेरे रहन

सहन में किसी गरीब भाई का किसी भी प्रकार का कोई नुकसान तो कहीं नहीं हुआ है। तथा किसी भी बुजुर्ग का मेरे से कोई अविनय तो नहीं बनपड़ा है। इस प्रकार से सोच कर देखना। अगर कोई भी तरह की कुचेष्टा बन गई हो तो भगवान को स्मरण कर उनके सम्मुख पश्चाताप करना और आगे के लिये कभी नहीं होने देने का दृढ संकल्प करना चाहिये। प्रतिदिन सुबह और सायंकाल को इस प्रकार सम्भाल करते रहने से मनुष्य की बुद्धि निर्मल बनी रहती है। साण पर चढा कर तैयार की हुई तलवार के समान तीखी बनकर अपने करने योग्य कार्य को आसानी के साथ कर जा सकती है।

उपवास का महत्व

यह कोई नई बात नहीं है कि शरीर को स्थिर रखने के लिये आहार की खास आवश्यकता होती है। जो कुछ हम भोजन करते है उसका रस रक्तादि बनकर हमारे शरीर को बनाये रखने में सहायक होते हैं। परन्तु वह भोजन भी प्राकृतिक और मितमात्रा में तथा समुचित रीति से खायाजाना चाहिये; नहीं तो वही भोजन लाभ के स्थान पर हानिकारक हो रहता है। भोजन शरीर का साधन है इस लिये यह शरीरधारी भी भोजन का आदि बना है और इसी लिये होसके जहां तक अच्छे से अच्छा स्वादिष्ट रुचिकर बनाकर खाया करता है। भोजन रुचिकर होने से कभी कभी अत्यधिक मात्रा में भी खा लिया जाता है ताकि अजीर्ण होकर शरीर रोगी बनने का अन्देशा रहता है। अतः इस

अजीर्ण को दूर करने के लिये उपवास करने की अर्थात् भोजन न करने की आवश्यकता होती है।

हां उपवास करने में जिस प्रकार भोजन के त्याग करने की जरूरत होती है उसी प्रकार अपने मन और इन्द्रियों को भी वश में रखने की आवश्यकता पड़ती है मन को वश में किये विना जो भोजन त्याग कर दिया जाता खाना नहीं खाया जाता वह लंघन कहलाता है और लंघन से कभी २ लाभ के स्थान पर हानि हो जाया करती है।

एक समय एक मोटी वुद्धि का आदमी अपनी औरत को लिवा लाने के लिये ससुराल में गया। वहाँ उसके लिए अच्छे पदार्थ खाने के लिये वने तो स्वादिष्ट समझकर उन्हें वह खूब खा गया। अतः अजीर्ण हो जाने से वैद्य ने उससे कहा कम से कम आज भर के लिये तुम खाना मत खाओ ताकि तुम्हारा अजीर्ण पचकर ठीक हो जावे। इस पर उसने भोजन नहीं किया मगर उसका मन भोजन के लिये ललचाता रहा अतः एक दिन भर तो ससुराल वालों की शर्म खाकर विना खाये रहा किन्तु जव रात हुई तो सोचा कि कुछ न कुछ तो खाना ही चाहिये, नहीं तो फिर यह पहाड़ जितनी लम्बी रात कैसे कटेगी। इधर उधर को देखा तो अपनी खटिया के नीचे चावलों की भरी थरिया रखी थी उसमें से एक मुट्ठी भरकर मुंह में दे गया। इतने ही में घर वाली आ गई तो अव उन्हें चवावे कैसे उसके सामने शर्म के मारे वह फूलाये रहा। उसे ऐसी हालत में देखकर उसकी घर वाली ने अपनी माँ को आवाज दी। दोनों गौर से देखकर कहने लगी कि इनके तो कुछ रोग हो गया है जिससे

गाल फूल गये हैं। और मुंह खोला नहीं जाता है। डाक्टर को बुलाया गया तो यथार्थ बात को समझते हुये भी अपनी डबल फीस अदा करने के विचार से उसने उसके गाल पर नस्तर लगाया और नखचूटी से एक चावल खून में भिगो कर निकाला तथा दिखाते हुये कहा कि इनके तो अजीर्ण के कोप से मुंह में कीड़े पड़ गये हैं। अतः तुम दोनों बाहर चली जाओ; मुझे इन कीड़ों को धीरे धीरे निकालने दो। माँ बेटी अफसोस करती हुई बाहर चली गई तो डाक्टर ने कहा कि कमअकल अब तो इन चावलों को थूक दे अगर भूखा नहीं रहा जाता है तो अब तुझे दूध पिला दिया जावेगा। उसने मिट्टी भरे सकोरे में थूक दिया। डाक्टर ने उन पर और मिट्टी डालदी और उन दोनों औरतों को बुला कर कहा—जाओ इन विषैले कीड़ों को गढ़ा खोद कर दबा दो तथा इन्हें दूध पिलाओ।

मतलब इस सबका यह कि बिना मन को वश में किये जो उपवास किया जाता है उससे ऐसाही दुरुपयोग होता है। हां मन और इन्द्रियों को वश में रख कर जो उपवास किया जाता है। तो उससे आत्मबल बढ़ता है। हमारे भारत के हृदय सम्राट महात्मा गांधी जी ने तो उपवास के बल पर बड़े २ कार्य कर बताये थे। उनके सत्याग्रह, असहयोग और उपवास ये तीन ही खाश प्रयोग थे। हमारे आर्ष शास्त्रों में भी उपवास की बड़ी ही महीमा बताई है। साधु महात्मा लोगों के करने योग्य तपश्चरण में तो सबसे पहिला नम्बर उपवास का ही रखा गया है किन्तु ग्रहस्थों को भी कम से कम एक सप्ताह में एक उपवास करने करने को आवश्य कहा गया है।

—

दान करना

दान का सीधा सा मतलब है अपने तन मन और धन से औरों की सहायता करना। मनुष्य जीवन ही ऐसा है कि किसी न किसी रूप में दूसरे से सहायता लिये बिना उसका कुछ भी काम नहीं बन सकता है। जबकि औरों से सहायता लिये बिना निर्वाह नहीं तो फिर औरों की सहायता करना भी उचित ही है। अतः दान करना परमावश्यक है परन्तु इसके साथ बात भी सही है कि यह मनुष्य लेना तो जानता है और देने में संकोच किया करता है।

आम तौर पर देखनेमें आता है कि मनुष्य दोनो हाथोंसे कमाया करता है मगर खाता एक हाथसे है इसका मतलब यही कि मनुष्य काम धन्धे में अपने दोनों हाथोपर भरोसा रखे अपने कर्त्तव्य कार्य को दूसरे से करवा लेने का विचार अपने मन में कभी न आने दे। प्रकृति ने जब खुद को दो हाथ दिये हैं तो फिर क्यों व्यर्थ ही दूसरे के सहारे को टटोलता रहे। हरेक समुचित काम को सबसे पहले अपने आप खुद कर बताने को तैयार रहे। हां, जो अपने दोनों हाथों की कमाई है उसमें से एक हाथ की कमाई को तो अपने शरीर के निर्वाह में और कुटुम्ब के पालन पोषण में खर्च करे। शेष एक हाथ की कमाई को परमार्थ के लिये बचाकर रखे उसे परोपकार के कार्यो में खर्च करे। लेने के स्थान पर किसी को कुछ देना सीखे ऐसा हमारे बुजुर्गों का कहना है।

हरएक को चाहिये कि घर पर आये हुए आत्मा को होनहार परमात्मा मानकर उसका सत्कार करे और भी कुछ नहीं तो कम से

कम मिष्ट सम्भाषण पूर्वक अपने पास बैठने को उसे जगह देवे। भूखे को रोटी खिलाकर प्यासे को पानी पिलादे। भूले भटके हुये को सही रास्ता बतलादे।

दान अपनी कमाई में से देना

किसी एक गांव का राजा मर जाने से उसकी एवज में उसके बेटे का राज तिलक होने लगा। जिसकी खुशी में वहां उसने दान देना शुरू किया जिसे सुनकर बहुत से आशावान् लोग वहां पर जमा हो गये। उन्हीं में एक पढ़ा लिखा समझदार पण्डित भी था जिसने होनहार राजा की प्रशंसा में कुछ श्लोक पढ़कर सुनाए। राजा बड़ा खुश हुआ और बोला कि तुमको जो चाहिए सो लो। पण्डित ने कहा मैं अभी आपसे क्या लूं ? फिर कभी देखा जावेगा। राजा ने कहा कि कुछ तो अभी भी तुकको मुझसे लेना ही चाहिये। पंडित बोला कि यदि आप देना ही चाहते हैं तो एक रुपया मुझे दे दीजिए मगर वह आपका अपनी कमाई का होना चाहिये। इसको सुनकर और सब लोग तो कहने लगे कि इसने राजा से क्या मांगा। कुछ नहीं मांगा परन्तु राजा ने सोचा कि इसने तो मुझसे बहुत बड़ा दान मांग लिया क्योंकि मेरे पास इस समय मेरा कमाया हुआ तो कुछ भी नहीं है यह जो राज्य सम्पति है वह तो या तो पिता जी की देन है या यों कहो कि इस पर आम प्रजा का अधिकार है। मेरा इसमें क्या है ? अतः मैं मेरी मेहनत से कमाकर लाकर एक रुपया इसे दूं मैं उसके बाद ही इस राज्य सिंहासन पर बैठूंगा ऐसा कह कर कोई काम करने की तलाश में गांव से चला गया। इसे राजपुत्र

तथा होनहार राजा समझकर जिसके भी पास में वह जावे तो उसका सम्मान तो खूब ही हो मगर इससे कोई भी काम कैसे लेवे और क्या काम लेवे। अतः बहुत देर तक चक्कर काटते २ वह एक लुहार की दुकान पर पहुंचा। लुहार लोहा गरम करके उसे घन से कूटने को था जो कि अकेला था दूसरे किसी सहकारी की प्रतीक्षा में था उसके पास जाकर बोला कुछ काम हो तो बताओ ? तब लुहार बोला आओ मेरे साथ इस लोहे पर घन बजाओ और श्याम तक ऐसा करो तो तुम्हें एक रुपया मिल जावेगा। राजापुत्र ने सोचा ठीक है परन्तु जहाँ उसने घन को उठाकर एक दो वार चलाया तो उसका सारा शरीर पसीने में तर बतर हो रहा। राजपुत्र बोला कि बाबा यह काम तो बड़ा कठिन है जबाब मिला कि नहीं. तो फिर रुपया कहीं ऐसे ही थोड़े ही मिल जाता है। खून का पानी हो जाता है तो कहीं पैसा देखने को मिलता है। राजपुत्र सुनकर दंग रह गया परन्तु और करता भी क्या लाचार था। जैसे तैसे करके दिन भर घन बजाकर रुपया लिया तथापि समझ जरुर गया कि आम गरीब जनता इस प्रकार परिश्रम करके पेट पालती है। हम सरीखे राज-घराने वालों को इसका बिलकुल भी पता नहीं है अगर वह पण्डित ऐसा दान देने को न कहता तो मुझे भी क्या पता था। कि प्रजा के लोगों को अपना, अपने कुटुम्ब का भरण पोषण करने के लिये किस प्रकार कष्ट सहन करना पड़ते हैं। अस्तु राजपुत्र वह रुपया ले जाकर पण्डित को देते हुये कहने लगा कि महाशय जी धन्य है, आपने मेरी आंखें खोल दी। पण्डित बोला अभी मुझे यह एक रुपया देकर उसके फल स्वरुप अब आप सच्चे राजा हो रहेंगे।

दान का सही तरीका—

आपने राजस्थान इतिहास देखा होगा। वहां महान् उदयन का वृत्तान्त लिखा हुआ है। वह मननशील विद्वान था। परन्तु दरिद्रता के कारण उसके पैर जमीन पर नहीं जम सके थे। अतः वह नंगे पैर मारवाड़ के रेतीले मैदान को पार करते हुए बड़े कष्ट के साथ सिद्धपुर पाटन तक पहुँच पाया। उसने दो दिन से कुछ भी नहीं खाया था और शरीर पर मैले तथा फटे कपड़ों को पहरे हुये था। वह वहां पहुँच तो गया परन्तु वहां भी उसे कौन पूछने वाला था। उसका नाते रिस्तेदार या परिचित तो था ही नहीं जोकि उसके सुख दुःख को उसे पूछता। थोड़ी देर बाद वह एक जैन धर्मस्थान के द्वार पर जा बैठा। यद्यपि वहां पर धर्म साधन करने के लिये अनेक लोग आते थे और ईश्वरोपासना तथा धर्मोपदेश करके जा रहे थे जिनमें कितने ही श्रीमान् लोग भी थे जिनके गले में सोने के तोड़े और शीश पर सुनहले काम की पगड़ियाँ चमक रही थी। जोकि अपनी नामवरी के लिये तिजोरी खोलकर पैसे को पानी की भांति बहाने वाले थे मगर गरीब मुसाफिर की तरफ कौन देखने वाला था।

हां ! थोड़ी देर बाद एक बहनजी आई। जिसका नाम लक्ष्मी-बाई था। वह यथानाम तथा गुण वाली थी। उसने उसी दिन उदयन को विकल दशा में बैठे हुये देखा तो पूछा कि यहां पर किस लिये आये हो ? ~ मिला कि रोजी की तलाश में। बहन जी ने फिर पूछा कि-क्या तुम्हारी जान पहचान का यहां पर कोई है ? जवाब मिला कि नहीं। क्षणभर विचार कर बहनजी ने कहा कि भाई जो

फिर कैसे काम चलेगा ? विना जान पहचान के तो कोई पास में भी नहीं वैठने देता है। उदयन ने कहा वहनजी ! कोई वात नहीं, मैं तो अपने पुरुपार्थ और भाग्य पर भरोसा करके यहां पर आ गया हूं। अगर कोई अच्छा काम मिल गया तव तो अपने दो हाथ वताऊंगा, नहीं तो भूखा रह मर मिटूंगा। इतना सुनते ही लक्ष्मीवाई वोली कि अभी भोजन किया है या नहीं ? इस पर उदयन वोला कि वहनजी मुझे भोजन किये हुये दो रोज हो लिये हैं और न जाने कितने दिन और ऐसे ही निकल जावेंगे। परन्तु भूख की चिन्ता नहीं है अगर भूख की परवाह करता तो फिर मैं मेरे गाँव से इतनी दूर तक चल कर भी कैसे आ जाता।

यह सुनते ही लक्ष्मीवाई का हृदय हिल गया, वह वोली कि तुम मेरे साथ चलो भाई ! भोजन तो करो फिर जैसा कुछ होगा देखा जावेगा। उदयन ने कहा वहन जी आप तो ठीक ही कह रही हैं, मगर मैं आपके साथ कैसे चलूं ? मैंने आपके यहां का कोई भी कार्य तो किया नहीं, फिर आपके साथ मुफ्त की रोटी खाने को कैसे चल सकता हूँ। लक्ष्मीवाई वोली तुम ठीक कह रहे हो मगर तुमने मुझे वहन कहा है और मैंने तुमको भाई। फिर भाई के लिये वहन की रोटी मुफ्त की नहीं होती किन्तु अभूतपूर्व भ्रातृ स्नेह के उपहार स्वरूप होती है। अतः उसके खाने में कोई दोष नहीं है। तुम भले ही किसी भी कोम के, कोई भी क्यों न हो मगर धार्मिकता के जबकि तुम मेरे भाई हो और मैं तुम्हारी वहन फिर संकोच कैसा ? तुमको तो सहर्ष मेरा कहना स्वीकार कर लेना चाहिये, अन्यथा तो फिर मेरी तवियत को वड़ी ठेस लगेगी। भाई

साहेब ! अतः कृपा कर मेरा कहना स्वीकार कीजिये और मेरे साथ चलिये।

लक्ष्मीबाई के इस तरह के स्वाभाविक सरल विनिवेदन का उदयन के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अतः वह उसके साथ हो लिया। घर जाकर लक्ष्मीबाई ने उदयन को प्रेम और आदर के साथ भोजन कराया तथा अपने पतिदेव से कह कर उसके योग्य कुछ समुचितकुछ काम भी उसे दिलवा दिया। जिसे पाकर उन्नति करते हुये वह धीरे धीरे चल कर एक दिन वही सिद्धपुर पाटन के महाराज का महामंत्री बन गया। जिसने प्रजा के नैतिक स्तर को ऊंचा उठा कर उसे सन्मार्गगामिनी बनाया।

मतलब यह कि वही सच्चा दान होता है कि दाता के सात्विक भावों से ओतप्रोत हो एवं जिसको दिया जावे उसकी आत्मा को भी उन्नत बनाने वाला हो तथा विश्वभर के लिये आदर्श मार्ग का सूचक हो।

बड़ा दान

यद्यपि आमतौर पर लोग एक रुपया देने वाले की अपेक्षा पांच रुपये देने वाले को और पांच देने वाले की अपेक्षा पचास तथा पाँचसो देने वाले को महान दानी कहकर उसके दान की बड़ाई किया करते हैं। मगर समझदार लोगों की निगाह में ऐसी बात नहीं है क्योंकि एक अदमी करोड़पति अरबपति जिसकी अपने खर्चको बाद देकर भी हजारों रुपये रोजाना कीआमदनी है वह आठ हाथ भी किसीको यदि सौ रुपये देदेता हैतो उसके लिये ऐसा करना कौनसी बड़ी बात है।

हां कोई गरीब भाई दिन भर मेहनत मजदूरी करके बड़ी मुसकिल से कहीं अपना पेट पाल पाता है। वह आदमी अपनी उन दो रोटियों में से आधी रोटी भी किसी भूखे को दे देता है तो वह उसका दान बड़ा दान है' उसकी बड़ी महिमा है। वह महा फल का दाता होता है।

एक समय की बात है मैं कलकत्ते में काम किया करता था तो वहां कांग्रेस का सालाना जलसा हुआ जिसके अन्त में महात्मा गांधी जी ने कांग्रेस की सहायता करने के लिये आमजनता के सम्मुख अपील रखी। जिसको लेकर किसी मकानदारने अपना एक मकान कांग्रेस को दिया तो किसी धनवान ने लाख रुपये, किसी ने पचास हजार रुपये इत्यादि। इतने में एक खांचा मुटिया आया और बोला कि महात्मा जी ? मैं भी ये आठ आने पैसे जो कि दिन भर मुटिया मजदूरी करने से मुझे प्राप्त हुये हैं। देश सेवार्थ कांग्रेस के लिये अर्पण करता हूँ। क्या करूं अधिक देने में असमर्थ हूँ रोज मजदूरी करता हूँ और पेट पालता हूं मगर मैंने यह सोच कर कि देश सेवा के कार्य में मुझे भी सामिल होना चाहिये, यह आजकी कमाई भर कांग्रेस की भेंट कर रहा हूँ। मैं आज उपवास से रह लूंगा और क्या कर सकता हूँ ?

इस पर महात्मा गांधी जी ने उस भाई की भूरि भूरि प्रशंसा की थी और कहा था कि हमारे देश में जब ऐसे त्यगा पुरुष विद्यमान हैं। तो फिर हमारा देश स्वतन्त्र होने में अब देर नहीं समझना चाहिये। हमारे पुराने साहित्य में भी एक कथा आती है कि एक मेहनतिया था जो कि मेहनत करके उसके फल

स्वरुप कुछ अनाज लाया और लाकर उसने उसे अपनी घर वाली को दिया ताकि वह उसे साफ सुथरा करके पीस कर उसकी रोटियां बनाले। औरत ने भी ऐसा ही किया उसने उसकी मोटी मोटी तीन रोटियां बनाई क्योंकि उसके एक छोटा बच्चा भी था। अतः उसने सोचा कि हम तीनों एक एक रोटी खाकर पानी पीलेवेंगे। रोटियां बन कर जब तैयार हुई तो मरद के दिल में विचार आया कि यह कमाना और खाना तो सदा से लगा ही हुआ है और जब तक जिन्दगी है लगा ही रहेगा। हमारे बुजर्गों ने बताया है कि कमा खाने वाले को कुछ परार्थ भी देना चाहिये तो आज तो फिर यह मेरे हिस्से की रोटी किसी अन्य भूखे को ही देलूं। मैं आज भूखा ही रहलूंगा। इतने ही में उसे एक मासोपवासी क्षीणकाय दिगम्बर परमहंस साधु दिखाई दिये। तो उन्हें देख कर वह बोला कि साधु जी ? प्रणाम, मेरे पास रूखी सूखी और बिना नोनकी जो कि रोटी है मैं इसे मनसा वाचा कर्मणा आपके लिये देना चाहता हूं। आइये और आप इसे खा लीजिये। साधु तो मन और इन्द्रियों के जीतने वाले होते हैं। सिर्फ इस शरीर से भगवद्भजन बन जावे इस विचार को लेकर इसे चलाने के लिये कुछ खुराक दिया करते हैं। जिस पर भी उनके तो आज ऐसा ही अभिग्रह भी था। अतः उन्होंने उसकी दी हुई उस रोटी को अपने हाथों में ली और खड़े खड़े ही मौनपूर्वक खा गये। इतने में औरत ने भी विचार किया कि ऐसे साधुओं के दर्शन कहां रखे हैं। हम लोगों का बड़ा भाग्य है ताकि हमारा रूखा सूखा अन्न आज इनके उपयोग में आ रहा है। लड़के ने भी सोचा कि ओह ये तो हम लोगों से भी गरीब दीख रहे हैं।

जिनके शरीर पर बिलकुल कपड़ा नहीं, खाने के लिये कोई पात्र नहीं, रहने को जिनका कोई घर नहीं इनके काम में मेरी रोटी आगई इससे भली बात और क्या होगी। इस पर देवताओं ने भी अहो यह दान महादान है ऐसा कहते हुये आकाश में से फूलबर्षाये तथा जय जय कार किया। सो ठीक ही है। परमार्थ के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देना ही मनुष्य जन्म पाने का फल है। अन्यथा तो फिर स्वार्थ के कीच में तो सारा संसार ही फंसा हुआ दीख रहा है।

समाधिमरण

जिसने भी जन्म पाया है, जो भी पैदा हुआ है उसे मरना अवश्य होगा, यह एक अटल नियम है। बड़े बड़े वैज्ञानिक लोग इस पर परिश्रम करके थक लिये कि कोई भी जन्म लेता है सो तो ठीक, मगर मरता क्यों है ? मरना नहीं चाहिये। फिर भी इस में सफल हुआ हो ऐसा एक भी आदमी इस भूतल पर नहीं दिख पड़ रहा है। धन्वन्तरि जी वैष्णवों के चौबीस अवतारों में से एक अवतार माने गये हैं। कहा जाता है कि जहां वे खड़े होजाते थे, वहां की जड़ीबुटियां भी पुकार पुकार कर कहने लगती थी कि मैं इस बीमारी में काम आती हूँ, मैं अमुक रोग को जड़ से उखाड़ डालती हूं। मगर एक दिन आया कि धन्वन्तरि खुद ही इस भूतल पर से चलबसे। जड़ीबूटियां यहीं पड़ी रही और धन्वन्तरि शरीर त्याग कर चले गये। उनका औषधिज्ञान इस विषय में कुछ भी काम नहीं आया—

मुसलमानों में भी लुकमान हकीमसे हुये हैं जो कि चौदह पीरों में से एक पीर कहे जाते हैं। मगर मौत आकर उनका भी लुकमा कर गई। जैसे सिंह हिरण को और बाज तीतर को धर दबाता है। वैसे ही मौत मनुष्यों को एवं समस्त शरीरधारियों को हड़प लेती है, वह कब किसको अपना ग्रास बनायेगी यह निश्चित रूप से हम तुम सरीखी नहीं जान सकता है। अनेक लोग मौत से बचने के लिये टोणा-टामण जन्तर-मन्तर करते हैं, तबीज बनाकर गले में बान्धते हैं। फिर भी मौत अपना दाव नहीं ही चूकती, समय पर आही दबाती है। उससे बचने के लिये शरीरधारी के पास कोई भी चारा है ही नहीं। ऐसी हालत में समझदार आदमी मौत से डरकर भागे तो क्यों भागे? और भाग कर जावे भी कहां, उसके लिये जगह भी कहां तथा कौनसी है जहां कि वह उससे बचरहे।

हां, तो इसका क्या अर्थ है कि गले में अङ्गलि डाल कर मर जाना चाहिये? सो नहीं, क्यों कि ऐसा करना तो नरसे नारायण बना देने वाले इस मानव शरीर के साथ विद्रोह करना है। चिन्ता-मणि रत्न को हथोड़े की चोट से बरबाद करना है। यह पहले दर्जे की बे समझी है। परन्तु इसकी किराये की कोठरी के समान समझते हुये रहना चाहिये।

जैसे किसी को कुछ अभीष्ट करना हो और उसके पास अपना नियत स्थान न हो तो वह किसी किराये के मकान में रहकर अपने उस कार्य का साधन किया करता है। सिर्फ वहां पर रहकर अपना कार्य कर बताने पर दृष्टि रखता है, न कि उस मकान का मालिक ही बन बैठता है। मकान को तो मकानदार जब भी खाली करवाना

चाहे करवा सकता है यह उसे बेउजर खाली कर देने को तैयार रहता है। क्योंकि मकान उसका है। हां जब तक उसमें रहे यथा शक्य झाट पौंछकर साफ सुथरा किये रहे यह उसकी समझदारी है।

जीवात्मा ने भी भगवान का भजन कर अपना कल्याण करने को इस शरीर रूपी कुटिया में अपना स्थान बनाया है सो इस में रहते हुये इसके सम्मुख अनेक तरह के भले और बुरे प्रसङ्ग आ उपस्थित होते हैं। उनमें से बुरे को बुरा मान कर उनसे दूर भागने की चेष्टा करना और भलों को भला मान कर उनके पीछे ही लगा रहना इस उलझन में ही फंस जाना ठीक नहीं। किन्तु उन दोनों तरह के प्रसङ्गो में तटस्थ रूप से सुप्रसन्न हो कर निरन्तर परम परमात्मा का स्मरण करते रहना चाहिये। फिर यह शरीर यदि कुछ दिन टिका रहे तो ठीक और आज ही नष्ट हो जावे तो भी कोई हानि नही ऐसे सुप्रसिद्ध पुरुष के लिये मोत का कोई डर नही रह जाता, जिस मोत के नाम को सुन कर भी संसारी जीव थर २ कापा करते हैं।

मोत क्या चीज है ?

एक सेठ था जिसके पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से ऐहिक सुख की सब तरह की साधन सामग्री मोजूद थी। अतः उसे यह भी पता नहीं था कि कष्ट क्या चीज होती है। उसकी प्रत्येक क्षण अमन चैन से बीत रही थी। अब एक रोज उसके पड़ोसी के यहां पुत्र जन्म की खुशी में गीत गाये जाने लगे जो कि बड़े ही सुहावने थे जिन्हें सुनकर उस सेठ का दिल भी बड़ा खुश हुआ। परन्तु

संयोगवश थोड़ी देर बाद ही वह बच्चा मर भी गया तो वहां पर गाने के स्थान पर छाती, मूंड कूट कूट कर रोया जाने लगा। जिसे सुनकर सेठ के मन में आश्चर्य हुआ। अतः उसने अपनी माता से पूछा कि मैया यह क्या बात है? थोड़ी देर पहिले जो गाना गाया जा रहा था वह तो बहुत ही सुरीली आवाज में था मगर अब जो गाना गाया जा रहा है वह तो सुनने में बुरा प्रतीत हो रहा है।

माता ने कहा, बेटा! यह गाना नहीं किन्तु रोना है। थोड़ी देर पहले जिस बच्चे के जन्म की खुशी में गीत गाये जा रहे थे वही बच्चा अब मर गया है जिसे देख देखकर उसके घर वाले अब रो रहे हैं। सेठ दौड़ा और जहां वह बच्चा मरा हुआ पड़ा था तथा लोग रो रहे थे वहां गया। उसने उस मरे हुए बालक को देखा और खूब गौर से देखा। देखकर वह बोला कि क्या मरा है। इसका मुंह, कान, हाथ, नाक आंखें और पैर आदि सभी तो ज्यों के त्यों हैं फिर आप लोग रो क्यों रहे हैं? तब उन रोने वालों में से एक आदमी कहने लगा कि सेठ साहब आप समझते नहीं हो तुमने दुनियां देखी नहीं है। इसलिए ऐसा कहते हो। देखो अप लोगों का पेट कभी ऊंचा होता है और कभी नीचा लेकिन इसका नहीं हो रहा है। अपनी छाती धड़क रही है परन्तु इसकी छाती में धड़कन बिलकुल नहीं है। मतलब कि हम लोगों के इन जिन्दा शरीरों में एक प्रकार की शक्ति है जिससे कि जीवन के सब कार्य सम्पन्न होते हैं जिसका कि नाम है आत्मा। वह आत्मा इसके शरीर में नहीं रही है अतः यह मुर्दा यानि बेकार हो गया हुआ है। हम लोगों के शरीरों में से भी वह निकल जाने वाली है जो किसी

की दो दिन पहिले और किसी की दो दिन पीछे अवश्य निकल जावेगी एवं हमारे ये शरीर भी इसी प्रकार मुर्दा वन जावेंगे मौत पा जावेंगे।

आत्मा जिसका कि वर्णन ऊपर आ चुका है जिसके कि रहने पर शरीर जिन्दा और न रहने पर मुर्दा वन जाता है वह आत्मा अपने मूल रूप में शाश्वत है कभी भी नष्ट नहीं होने वाली है और अमूर्तिक है उसमें न तो किसी भी प्रकार का काला पीला आदि रूप है, न खट्टा न मीठा चरपरा आदि कोई रस है। न हलका, भारी, रूखा, चिकना, ठण्डा, गरम और कड़ा या नरम ही है। न खुशबुदार या बदबूदार ही है। हां सिर्फ चेतनावान है, हरेक चीज के गुण दोषों पर निगाह करने वाला है। जिसमें अवगुण समझता है उससे दूर रहकर गुणवान के पीछे लगे रहना चाहता है। यह इसकी अनादि की टेव है जिसकी वजह से नाना तरह की चेष्ठाएं करने लग रहा रहा है। उन चेष्टाओं का नाम ही कर्म है। उन कर्मों की वजह से ही शरीर से शरीरान्तर धारण करता हुआ चला आ रहा है इसी का नाम संसार चक्र है।

संसार चक्र में परिश्रम करता हुआ आत्मा इतर जीवात्मा को कष्ट देने वाला वनकर नरक में जा जन्म लेता है तो यहां स्वयं अनेक प्रकार के घोर कष्ट सहन करता है। अपने ऐश आराम की सोचते रहकर छलवृति करने वाला जाकर पशु या पक्षी वनता है तो वहां अपने से अधिक वलशाली अन्य प्राणियों द्वारा वन्चना पूर्ण कष्ट उठाता है। हां अगर औरों के भले की सोचता है तो उसके फलस्वरूप स्वर्ग में जन्म लेकर सुखसाता का अनुभव करने वाला वनता है परन्तु संतोप भाव से अपना समय विताने वाला जाकर मानव वनता है जिस मानव जन्म में अपने आपके उद्धार का मार्ग

यदि यह चाहे तो ढूंढ निकाल सकता है। लेकिन अधिकांश जिवात्मा तो मानव जन्म पाकर भी मोह माया में ही फंसा रहता है। इस शरीर के सम्बन्धियों को अपना सम्बन्धी मानकर उनमें मेरा २ करने वाला और बाकी के दूसरे पदार्थों को पराये मानकर उनसे नफरत करने वाला होकर रहता है।

कोई विरला ही जीव ऐसा होता है जो कि शरीर से भी अपने आप (आत्मा) को भिन्न मानता है एवं जबकि आप इस शरीर से तथा इतर सब पदार्थों से भी भिन्न है। ऐसी हालत में पराए गुण दोषों पर लुभाने से क्या हानि लाभ होने वाला है। पराये गुण दोष परमें होते हैं उनसे इसका क्या सुधार बिगाड़ हो सकता है ? क्यों व्यर्थ ही उनके बारे में संकल्प विकल्प करके अपने उपयोग को भी दूषित बनावे ? तटस्थ हो रहता है। उसके लिये फिर इस संसार में न कोई भी सम्पत्ति ही होती है और न कोई विपत्ति ही. वह तो सहज तथा सच्चिदानन्द भाव को प्राप्त हो रहता।

समता के द्वारा ममता को मिटा डालता है। क्षमा से क्रोध का अभाव कर देता है। विनीत वृत्ति के द्वारा मान का मूलोच्छेद कर फेंकता है। अपने तन, मन और वचन में प्राप्त किये हुए सरल भाव से कपट को पास में भी नहीं आने देता और निरीहता के द्वारा लोभ पर विजय पा जाता है। इस प्रकार कर्मजयी बनकर आत्मा से परमात्मा हो लेता है फिर सूके हुवे घाव पर खरूंड की भांति उसका यह शरीर भी अपने समय पर उससे अपने आप दूर हो जाता है। आगे के लिये फिर कभी शरीर धारण नहीं करना पड़ता।

ॐ शान्ति

यही एक कर्त्तव्य है सुखी बनें सब लोग,
रोग शोक दुर्भोग का कभी ना होवे योग ॥
यही एक कर्त्तव्य है कहीं ना हो संत्रास,
किसी जीव के चित में, सबलें सुख की साँस ॥
यही एक कर्त्तव्य है कभी न हो दुष्काल,
भूप और अनुरूप भी सभी रहें खुशहाल ॥

इति शुभ भूयात्